इस्लाम की पारिवारिक व्यवस्था और दहेज-प्रथा

प्रो० उमर हयात ख़ाँ ग़ौरी
अनुवादक
अज़ीज़ अख़्तर साबरी

बिस्मिल्लाहिर्रमानिर्रहीम

अल्लाह के नाम से जो बड़ा कृपाशील और दयावान है।

प्रस्तावना

'इस्लामी समाज और दहेज प्रथा' नामक पुस्तिका आपके समक्ष है। मुसलमानों में यह प्रथा चल पड़ी है कि लड़की के विवाह के अवसर पर "दहेज फ़ात्मी" के नाम से विदाई के समय घर की ज़रूरतों का कुछ सामान दिया करते हैं। आलिमों ने भी इसे जायज़ बताया है। परन्तु वे हमेशा उपदेश देते रहते हैं कि इस मामले में बीच का रास्ता अपनाना चाहिए और लड़की के माँ-बाप पर आर्थिक बोझ तो कदापि न डालना चाहिए।

मुझे दक्षिण भारत में काम करने का अवसर मिला तो पता चला कि इस इलाक़े के मुसलमानों में दहेज की एक और क़िस्म भी प्रचलित है, जो मध्य भारत के केवल ग़ैर-मुस्लिमों में देखने को मिलती है। आम मुसलमान अभी इस लानत और अभिशाप से बचे हुए हैं। इस रस्म के अनुसार लड़के के माँ-बाप किसी लड़की से शादी करने के लिए एक भारी रक़म की मांग करते हैं। अगर लड़की के पिता को शादी करनी है तो वह इस रक़म को अदा करने का वचन देता हैं। मानो मुस्लिम लड़कियों की हैसियत भेड़ बकरियों से भी गिर चुकी है। बाज़ार में मुर्ग़ी बेचने वाला पैसा लिए बिना किसी को अपनी मुर्ग़ी नहीं देता, मगर यहां लड़की का पिता, मुंह-मांगे पैसे देकर अपनी लड़की, लड़के वालों के हवाले करने के लिए विवश होता है। मुसलमान लड़कियों की यह दुर्गति और उनके माता-पिता की यह बेबसी अत्यंत दयनीय है। मगर अफ़सोस कि वहां रहम या दया करने वाला कोई भी नज़र नहीं आता। इस रस्म का नतीजा यह हुआ कि हज़ारों-लाखों जवान लड़कियां रिश्ता न मिलने के कारण आयु की ऐसी सीमा में प्रवेश कर चुकी हैं, जहां पहुंचकर उनके लिए शादी प्राय: अर्थहीन होकर रह जाती है। मुसलमान लड़कियों की यह स्थिति हर संवेदनशील और सहानुभूति भरे दिल को तड़पा देगी। वहां बहुत से लोगों से इस सिलसिले में बातचीत हुई। इस रस्म की सभी निन्दा करते हैं, लेकिन जब रक़म लेने का समय आता है, तो एक-आध को छोड़कर कोई भी पीछे नहीं हटता।

इस स्थिति को देखते हुए इस बात की ज़रूरत महसूस हुई कि इस मसले पर विस्तार के साथ बहस की जाए। शायद कुछ संवेदनशील लोगों का स्वाभिमान और ख़ुद्दारी जागे और मुस्लिम-समाज के नौजवानों के अन्दर ऐसा एहसास पैदा हो कि वे ख़ुदगरज़ी के इस घिनावने पथ से अपने आपको बचा सकें। इस मसले पर जो कुछ लिखने की तौफ़ीक़ हो सकी वह आपके सामने है। ख़ुदा करे यह कोशिश बेकार न जाए और जिस काम के लिए यह कोशिश की गई है वह पूरी हो।

उमर हयात ख़ां ग़ौरी
भोपाल

विषय - सूची

(1)

इस्लामी समाज और निकाह

इस्लाम एक सम्पूर्ण जीवन-व्यवस्था है। वह मानव-जीवन के हर विभाग के लिए पूर्ण तथा विस्तृत मार्ग-दर्शन प्रदान करता है, चूंकि समाज भी मानव-जीवन का एक मुख्य विभाग है, इसलिए इस्लाम ने इस सिलसिले में भी बुनियादी उसूलों और नीतियों से लेकर समाज के साधारण से साधारण मसलों और समस्याओं तक में हमारा मार्ग-दर्शन किया है।

समाज का उद्देश्य

चूँकि समाज़ एक मर्द और औरत के आपसी सम्बंध से शुरू होता है इसलिए इस्लाम सबसे पहले यह बताता है कि दोनों एक ही तत्व से पैदा किए गए हैं और दोनों के जन्म का उद्देश्य मानव-जाति के सिलसिले को क़ायम रखना है। क़ुरआन में है—

"लोगो अपने पालनहार की अवज्ञा से बचो, जिसने तुम्हें एक ज़ात से पैदा किया और उसी से उसका जोड़ा बनाया। फिर उन दोनों में बहुत से मर्द और औरत दुनिया में फैला दिए।" (4 : 1)

क़ुरआन मजीद की इस आयत में स्पष्ट रूप से बता दिया गया है कि औरत और मर्द दोनों एक ही तरह के दो जीव हैं और दोनों जीवों की रचना का उद्देश्य मानव-जाति को बढ़ाना और उसके सिलसिले को क़ायम रखना है। इस रचना का एक दूसरा उद्देश्य भी बताया गया है। क़ुरआन में है—

"वही है जिसने तुमको एक जान से पैदा किया और उसी से उसका जोड़ा बनाया ताकि उसके पास सुकून हासिल करे।" (7 : 189)

क़ुरआन की इन दोनों आयतों पर विचार करने से मालूम होता है कि इंसानी जोड़े के जन्म के दो महत्वपूर्ण उद्देश्य हैं। पहला तो यह कि इस जोड़े के द्वारा मानव-जाति को बाक़ी रखने का सामान किया जाए और दूसरा यह कि जीवन की व्यस्तताओं में भी इंसान सुकून हासिल कर सके। दूसरे उद्देश्य पर विचार करने से पता चलता है कि इस उद्देश्य से पहला उद्देश्य भी पूरा होता है।

इस प्रकार बच्चों का जन्म और उनका पालन-पोषण भी इंसानी जोड़ों के लिए अप्रसन्नता का काम नहीं होता।

इस्लामी समाज और जिंसी (Sexual) ज़रूरत

इस्लाम मानव की जिंसी ख़्वाहिशों को एक प्राकृतिक आवश्यकता मानता है। वह न तो उसे दबाने और कुचल डालने की सलाह देता है और न उसको ग़लत ठहराता है। बल्कि वह इस बात की पूरी अनुमति देता है कि मानव अपनी स्वाभाविक भावना की संतुष्टि का सामान करे। लेकिन मानव-जीवन की दूसरी प्राकृतिक आवश्यकताओं की तरह इस्लाम इसको भी आज़ाद और बेलगाम नहीं छोड़ता, बल्कि उस पर कुछ ऐसी सीमाएं और पाबंदियां लगा देता है ताकि मानव की यह शक्ति मैदान में चारों ओर बह जाने वाले पानी की तरह बिखर न जाए, बल्कि सीमाओं और पाबंदियों के मध्य बहकर नदी का रूप धारण कर सके। साथ ही साथ इसका भी लिहाज़ रखता है कि एक व्यक्ति की इच्छा की पूर्ति दूसरे के हक़ को छीनने का कारण न बने।

ज़िना और व्यभिचार विहीन समाज

यही कारण है कि इस्लाम जहां व्यक्ति की इस शक्ति को प्राकृतिक मानकर उसे पूरा करने की अनुमति ही नहीं देता, बल्कि उसे प्रोत्साहित भी करता है और वहीं वह आज़ाद जिंसी (Sexual) सम्बंधों को हराम क़रार देता है। दुनिया के दूसरे समाजों ने तो केवल बलात्कार को ही अपराध ठहराया है। अगर यह कर्म दोनों पक्षों की इच्छा से हुआ हो, तो उसे अपराध माना ही नहीं जाता। लेकिन इस्लाम स्वयं ज़िना (व्यभिचार) के काम को ही अपराध ठहराता है, चाहे वह काम ज़ोर-ज़बरदस्ती से किया गया हो या ज़ोर ज़बरदस्ती से न किया गया हो। अतः उसने ज़िना की ऐसी शिक्षाप्रद सज़ा प्रस्तावित की है, जिसके डर से कोई व्यक्ति इस अपराध को करने का दुस्साहस ही न कर सके। अतः क़ुरआन में कहा गया—

> "ज़िना के पास भी न फटको क्योंकि वह बेहयाई (अश्लीलता) है और बहुत बुरा रास्ता है।" (17 :32)

ज़िना को बेहयाई और बुरा रास्ता क़रार देने के बाद उसको अपराध ठहराया गया और उसकी सज़ा यह निर्धारित की गयी—

> "ज़िना करने वाली औरत और ज़िना करने वाले मर्द दोनों में से हर एक को सौ-सौ कोड़े मारो। अल्लाह के दीन (धर्म) के मामले में तुम्हें उन पर तरस न आए। अगर तुम अल्लाह और हिसाब के दिन पर ईमान रखते हो और उनको दण्ड देते समय ईमान वालों का एक गिरोह वहां पर मौजूद रहे।"
>
> (24 : 2)

क़ुरआन मजीद की इन आयतों में देखा जा सकता है कि इस्लाम के नज़दीक ज़िना कितना बड़ा अपराध है। यहां इच्छा और अनिच्छा का प्रश्न ही नहीं उठता। फिर ज़िना की यह सज़ा भी कारागार की चहार दीवारी के अन्दर न दी जाएगी बल्कि उसे सार्वजनिक स्थान पर खुली घोषणा के साथ दी जाएगी, ताकि ऐसे व्यक्तियों को पहचाना जा सके और जनता में से भी जिसके मन में ऐसे कुकर्म-युक्त अपराध करने का कोई रुजहान पाया जाता हो, तो वह इस शिक्षा-युक्त सज़ा को देखकर समाप्त हो जाए। ज़िना के बारे में अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा है—

"कुकर्मी जब कुकर्म करता है तो वह ईमान की हालत में कुकर्म नहीं करता।" (बुख़ारी आदि)

इस सिलसिले में बहुत-सी हदीसें हैं जिनसे मालूम होता है कि ज़िना करने वाले मर्दों और ज़िना करने वाली औरतों से इस्लाम अपने समाज को पाक रखना चाहता है। वह एक पवित्र समाज का निर्माण करता है, जिसमें जीवन की छुद्र और निम्न भावनाओं पर पाबंदी लगाई जाती है और जिसके सामने जीवन का पवित्रतम और उच्चतम उद्देश्य होता है। इस्लाम यह नहीं चाहता कि लोग ज़िना करते रहें और वह प्रसन्न होकर अपराधियों को कोड़े मारता रहे। इसके विपरीत वह ऐसा वातावरण उत्पन्न करना आवश्यक समझता है जिसमें निकाह द्वारा जायज़ तरीक़े से जिंसी इच्छाओं की पूर्ति आसान हो जाए और ज़िना करना अत्यंत कठिन हो जाए। इस उद्देश्य के लिए जहाँ वह नौजवान लड़कों और लड़कियों को निकाह करने के लिए प्रेरित करता है और निकाह को आसान से आसान बना देता है, वहीं वह ज़िना शब्द के अर्थ को इतना व्यापक कर देता है जिसके कारण वे सारे रास्ते बंद हो जाते हैं जहां से शैतान और मानव-मन धावा बोलकर किसी व्यक्ति को उस अपराध के लिए तैयार कर सकता है। हदीस में है कि अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"आंखों का ज़िना देखना है, कानों का ज़िना बातों को सुनना है, ज़ुबान का ज़िना बात-चीत है, हाथ का ज़िना पकड़ना है, पैर का ज़िना चल कर जाना है और मन का इच्छा और अभिलाषा करता है और शर्मगाह (गुप्तांग) इसकी पुष्टि या खण्डन करती है।" (बुख़ारी, मुस्लिम)

फिर पाक-दामनी का प्रतिफल बताया गया है—

"जो कोई अपनी ज़ुबान और शर्मगाह की रक्षा करने का मुझ से वायदा करे मैं उसके लिए जन्नत का ज़िम्मा लेता हूं।" (बुख़ारी)

ज़िना के निषेध का इतिहास और उसकी रोकथाम के इस्लामी उपाय

ज़िना के निषेध की ऐतिहासिक स्थिति और इस सिलसिले में इस्लाम की रणनीति बयान करते हुए इस्लामी जगत के महान विद्वान मौलाना सैयद अबुल

आला मौदूदी (रह०) लिखते हैं--

"ज़िना का भाव जिससे प्रत्येक व्यक्ति परिचित है यह है कि एक मर्द और एक औरत का पति-पत्नी के जायज़ रिश्तों को छोड़कर आपस में संभोग करना। इस कर्म का नैतिक रूप से बुरा होना या धार्मिक दृष्टिकोण से गुनाह होना या सामाजिक हैसियत से आपत्तिजनक होना एक ऐसी चीज़ है जिस पर प्राचीनतम् युगों से लेकर आज तक सम्पूर्ण मानव-समाज सहमत रहा है और वास्तव में इन सहमत लोगों के अलावा जिन्होंने अपनी बुद्धि को अपने मन के वशीभूत कर दिया है, या जिन्होंने पागलपन की उपज को फ़लसफ़ा गढ़ना समझ रखा है उन्होंने भी आज तक इससे असहमति नहीं प्रकट की है। इस विश्वव्यापी सहमति का कारण यह है कि मानव-प्रकृति को स्वयं ज़िना का निषेध ही अपेक्षित है। मानव-जाति को बाक़ी रखने और मानव-सभ्यता की बरक़रारी दोनों इस बात पर निर्भर हैं कि औरत और मर्द मात्र मन बहलाने के लिए मिलन और फिर अलग हो जाने में आज़ाद न हों, बल्कि हर जोड़े का आपसी सम्बंध एक ऐसी स्थाई और सुदृढ़ प्रतिज्ञा पर स्थापित हो जो समाज में जानी पहचानी भी हो और उसे समाज की ज़मानत भी मिली हुई हो। इसके बिना इंसानी नस्ल एक दिन के लिए भी नहीं चल सकती, क्योंकि इंसान का बच्चा अपने जीवन और अपने मानवीय विकास के लिए कई वर्षों की सहानुभूति पूर्वक देखभाल, पालन पोषण और प्रशिक्षण का मुहताज होता है। अकेली औरत उस बोझ को उठाने के लिए तैयार नहीं हो सकती जब तक कि वह पुरुष उसका साथ न दे जिसके कारण बच्चे का जन्म हुआ है। इसी प्रकार इस सहमति और समझौते के बिना मानवीय सभ्यता भी बरक़रार नहीं रह सकती। इसका कारण यह है कि सभ्यता का जन्म ही एक औरत और एक मर्द के मिलकर रहने, एक घर और एक परिवार को अस्तित्व में लाने और परिवारों के बीच रिश्ते-नाते पैदा होने से होता है। अगर औरत और मर्द घर और परिवार के निर्माण को अनदेखा करके केवल मन बहलाव के लिए स्वतंत्र रूप से मिलने लगें तो सारे इंसान बिखर कर रह जाएंगे। सामूहिक जीवन की जड़ कट जाएगी और वह आधार ही बचा न रहेगा जिस पर संस्कृति और सभ्यता का भवन खड़ा है। इन कारणों से औरत और मर्द का ऐसा स्वतंत्रपूर्वक सम्बंध जो किसी जानी पहचानी और पूर्ण प्रतिज्ञा पर क़ायम न हो, मानव-प्रकृति के विरुद्ध है। इन्हीं कारणों से इंसान इसको हर ज़माने में एक बड़ा दोष, एक बड़ी अनैतिकता और धार्मिक भाषा में एक बड़ा गुनाह समझता रहा है और इन्हीं कारणों से प्रत्येक ज़माने में मानव-समाज ने निकाह और विवाह को प्राथमिकता देने के साथ-साथ ज़िना की रोकथाम की भी किसी न किसी रूप में ज़रूर कोशिश की है। अलबत्ता इस कोशिश की शक्लों में विभिन्न क़ानूनों, नैतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक व्यवस्थाओं में अन्तर रहा है, जिसकी बुनियाद वास्तव में इस अंतर पर है कि मानव-जाति और

उसकी सभ्यता और उसके रहन-सहन के लिए ज़िना के हानिकारक होने का बोध कहीं कम है और कहीं अधिक, कहीं प्रत्यक्ष है और कहीं दूसरी समस्याओं में उलझ कर रह गया है।"

"इस्लाम मानव-समाज को ज़िना के ख़तरे से बचाने के लिए केवल क़ानूनी दण्ड के शस्त्र पर ही निर्भर नहीं करता, बल्कि वह इसके लिए बड़े पैमाने पर सुधारात्मक और निरोधात्मक उपाय प्रयोग में लाता है और यह क़ानूनी दण्ड उसने केवल एक आख़िरी उपाय के रूप में प्रस्तावित किया है। इसका उद्देश्य यह नहीं है कि लोग यह अपराध करते रहें और दिन-रात लोग इनपर कोड़े बरसाने के लिए लाइन में लगे रहें। बल्कि इसका उद्देश्य यह है कि लोग यह अपराध ही न करें और किसी को इसपर दण्ड देने की आवश्यकता ही न पड़े। वह सबसे पहले मानव की अंतरात्मा का सुधार करता है। उसके मन में ग़ैब (परोक्ष) के ज्ञाता और सर्वव्यापी शक्ति के स्वामी अल्लाह का डर बैठाता है। आख़िरत (परलोक) की जवाबदेही का एहसास दिलाता है, जिससे मरकर भी आदमी का पीछा नहीं छूट सकता। उस के अन्दर अल्लाह के क़ानून को मानने और उसके अनुसार चलने का जज़्बा पैदा करता है, जो ईमान के अनिवार्य रूप से अपेक्षित है और बार-बार उसे सावधान करता है कि ज़िना और व्यभिचार उन बड़े गुनाहों में से है, जिन पर अल्लाह की सख़्त पकड़ होगी।... इसके बाद वह आदमी के लिए निकाह की तमाम मुम्किन आसानियां पैदा करता है। एक पत्नी से संतोष न हो तो चार-चार से जायज़ सम्बंध रखने का अवसर प्रदान करता है। दिल न मिलें तो मर्द के लिए तलाक़ और औरत के लिए खुलाअ की सूरतें भी जुटाता है और मेल जोल न होने की सूरत में ख़ानदानी पंचायत से लेकर सरकारी अदालत से रुजू का रास्ता खोल देता है, जिससे या तो सुलह हो जाए या फिर दोनों एक-दूसरे से आज़ाद होकर जहां दिल मिले निकाह कर लें...। औरतों और मर्दों के अविवाहित बैठे रहने को नापसंद किया गया है और स्पष्ट आदेश दे दिया गया है कि ऐसे लोगों का निकाह कर दिया जाए। यहां तक कि लौंडी और ग़ुलामों को भी अकेला न छोड़ा जाए। फिर वह समाज से उन सब चीज़ों को समाप्त करता है जो ज़िना की ओर प्रवृत्त करने वाली, उसको उभारने वाली और उसके लिए अवसर पैदा करने वाली हो सकती हैं। ज़िना की सज़ा बयान करने से एक वर्ष पहले ही क़ुरआन की सूरा : अहज़ाब में औरतों को आदेश दे दिया गया था कि घर से निकलें तो चादरें ओढ़कर और घूँघट डाल कर निकलें और मुसलमान औरतों के लिए जिस नबी का घर नमूने का घर था उसकी औरतों को हिदायत कर दी गई थी कि घरों के अन्दर मान-सम्मान और सुकून के साथ बैठो और अपनी सुन्दरता तथा बनाव-सिंगार का दिखावा न करो, और बाहर के मर्द तुमसे कोई चीज़ लें तो परदे के पीछे से लें। यह नमूना देखते-देखते उन सभी ईमान वाली औरतों में फैल गया, जिनके निकट

जाहिलियत के ज़माने (अज्ञान काल) की निर्लज्ज औरतें नहीं बल्कि नबी (सल्ल०) की पत्नियाँ और बेटियां अनुसरण योग्य थीं। इस प्रकार फ़ौजदारी क़ानून की सज़ा निर्धारित करने से पहले औरतों और मर्दों का अनुचित मेलजोल बंद कर दिया गया। सजी-धजी औरतों का बाहर निकलना बंद कर दिया गया और उन सब कारणों और साधनों के द्वार बंद कर दिए गए जो ज़िना के अवसर प्रदान करते थे और उसके लिए सुगमताएं जुटाते थे। इन सबके बाद जब क़ुरआन की नूर में ज़िना की सज़ा निर्धारित की गई है तो आप देखते हैं कि इसी सूरा : नूर में अश्लीलता के प्रचार को भी रोका जा रहा है। वैश्यावृत्ति (Prostitution) की क़ानूनी बंदिश की जा रही है। औरतों और मर्दों पर बिना प्रमाण के बुरे कर्म करने का आरोप लगाने और उनकी चर्चा करने के लिए भी कड़ा दण्ड प्रस्तावित किया जा रहा है। निगाहें नीची रखने का आदेश देकर निगाहों पर पहरे भी बैठाए जा रहे हैं, ताकि निगाहें मिलाने से लेकर सौन्दर्य-प्रियता तक और सौन्दर्य-प्रियता से लेकर इश्क़बाज़ी तक की स्थिति न आने पाए और औरतों को भी यह आदेश दिया जा रहा है कि अपने घरों में महरम (वह पुरुष जिससे विवाह जायज़ न हो) और ग़ैर-महरम संबन्धियों में अंतर करें और ग़ैर-महरमों के सामने सज-धज कर न आएं। इससे आप क़ुरआन की पूरी सुधार-योजना को समझ सकते हैं, जिसके एक अंश के रूप में ज़िना की क़ानूनी सज़ा निर्धारित की गई है। यह सज़ा इसलिए है कि सुधार के सभी भीतरी और बाहरी उपायों के बावजूद अगर बुरे लोग खुले हुए जायज़ अवसरों को छोड़कर अनुचित रूप से ही अपनी मन की इच्छा को पूरी करने पर आग्रह करें तो उनकी खाल उड़ा दी जाए, और एक बुरे कर्म करने वाले को सज़ा देकर समाज के उन बहुत से लोगों का मनोवैज्ञानिक ऑपरेशन कर दिया जाए जिनमें इस तरह की प्रवृत्तियां पाई जाती हों। यह सज़ा केवल अपराधी के लिए पीड़ाजनक ही नहीं है, बल्कि इस बात का एलान भी है कि मुस्लिम-समाज बुरे कर्म करने वालों के दिल बहलाने की जगह नहीं है, जिसमें विलासी लोग नैतिकता की सीमा से आज़ाद होकर मज़े लूटते फिरें।"

(तफ़सीर सूरा : 24)

इस प्रकार इस्लाम ने अपने बनाए हुए समाज को ज़िना के अभिशाप से पाक करने के लिए यथासम्भव एहतियाती उपाय अपनाए हैं। उसने जब ज़िना करने वालों की सज़ा निर्धारित की, तो साथ ही साथ उसने उन सारे रास्तों को सख़्ती से बंद कर दिया जिनपर चलने से ज़िना की मंज़िल आती है। इस बुरे कर्म का प्रारम्भ नीयत और इरादों से होता है, आंखें इसमें आग जैसी गर्मी पैदा करती हैं, हाथ और पाव मंज़िल को और निकट कर देते हैं और फिर इस अपराध की मंज़िल आ जाती है, जिससे समाज को पाक रखना इस्लाम का उद्देश्य है। इसलिए इस्लाम इन सारे अंगों की गतिविधि को ज़िना से निरुपित करके उनके इन कर्मों को भी नापसंदीदा बना देता

है। इन नकारात्मक उपायों के साथ-साथ इस्लाम उस वातावरण को भी जड़ से उखाड़ देता है, जिससे औरत प्रत्येक छण और प्रत्येक स्थान पर पुरुष के साथ फिरती रहे। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए वह औरत के कार्य क्षेत्र को घर की चार दीवारी में सीमित करने के बाद उसको परदे के सुरक्षित क़िले में पहुंचा देता है जिससे कि स्वतंत्र रूप से काम-वासना की सम्भावनाएं ही समाप्त हो जाएं।

ज़िना के साथ इस्लाम की इस कठोर नीति का कारण वास्तव में उसका वह उद्देश्य है जिसके अन्तर्गत वह अपने समाज का निर्माण करता है। वह एक ऐसा पवित्र और न्याय पर आधारित समाज का निर्माण करना चाहता है, जिसमें किसी रूप में भी किसी व्यक्ति का शोषण न हो सके। ज़िना में सदा औरत ही का शोषण होता है चाहे वह इच्छा से हो या अनिच्छा से। इससे समाज में औरत के मान-सम्मान पर चोट लगती है और उसकी प्रतिष्ठा और पाक-दामनी छिन्न-छिन्न होकर रह जाती है। फिर जिस समाज में इसकी एक बार छूट दे दी जाए फिर उस समाज को जिंसी अराजकता (Sexual Anarchy) से बचाना सम्भव नहीं होता। दुनिया के दूसरे समाजों ने ज़िना का अपराधी केवल मर्द को माना है और अगर औरत की इच्छा भी उसके साथ हो तो फिर सिरे से यह अपराध ही नहीं रहता। इसलिए हाल ही में अमेरिका के एक न्यायालय में एक बूढ़े मर्द ने एक बुढ़िया के ख़िलाफ़ ज़िना का मुकद्दमा दायर किया था। जिसमें न्यायालय ने फैसला दिया कि अमेरिकी क़ानून में मर्द का बलात्कार होता ही नहीं है। इसलिए मुकदमा निरस्त कर दिया गया। लेकिन इस्लाम की दृष्टि में ज़िना औरत और मर्द दोनों का अपराध है। इसलिए यहां दोनों दण्ड के भागी ठहरा दिए गए हैं। अलबत्ता ज़ोर ज़बरदस्ती की सूरत में औरत रिआयत की पात्र अवश्य ठहराई गई है।

इस विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ज़िना के साथ इतनी कठोर नीति अपना कर इस्लाम ने विशेष रूप से औरतों को और कुछ परिस्थितियों में मर्दों को भी जिंसी शोषण के अभिशाप से सुरक्षित कर दिया है।

इस्लामी समाज में निकाह का महत्व

इस्लाम ज़िना की रोकथाम के लिए इन निषेधात्मक उपायों को अपनाने के बाद परदे के सुरक्षित क़िले में मर्दों को जाने के लिए निकाह का रास्ता खोल देता है, ताकि जिस व्यक्ति को भी इस मर्यादित जगह जाने की इच्छा हो वह इस अकेले रास्ते से ही प्रवेश करे। वह इस की अनुमति तो देता है कि एक औरत से निकाह न हो सके तो मर्द तलाक़ और औरत ख़ुलआ के रास्ते से अलग हो जाए और दोनों अपना कोई दूसरा उचित प्रबंध कर लें। अगर एक औरत काफ़ी न हो तो इस्लाम इसको भी सहन कर सकता है कि एक आदमी एक ही समय चार पत्नियां रख ले। लेकिन वह इस

बात को किसी भी क़ीमत पर सहन नहीं कर सकता कि लोग स्वतंत्रा पूर्वक जिंसी सम्बन्धों पर अमल करते फिरें।

अतः कुरआन की बहुत-सी आयतों में निकाह करने का आदेश दिया गया है। इसके लिए प्रेरणा भी दी गई है और कोशिश की गई है कि समाज में कोई बालिग़ मर्द या औरत निकाह से वंचित न रहे। यहां तक कि वह विधवा की दूसरी शादी कराने की अनुमति ही नहीं बल्कि प्रेरणा भी देता है। अतएव कहा गया है—

"....उनके अतिरिक्त जितनी औरतें हैं उन्हें अपने माल द्वारा प्राप्त करना तुम्हारे लिए हलाल (वैध) कर दिया गया है, शर्त केवल यह है कि निकाह के घेरे में उनको सुरक्षित करो, न यह कि स्वछन्द काम तृप्ति करने लगो।"

(4:24)

निकाह एक पक्का वचन है—

"और वे (पत्नियां) तुमसे पक्का वचन ले चुकी हैं।" (4:21)

इस्लामी समाज में ब्रह्मचर्य जीवन को अप्रिय ठहराकर उन्हें निकाह करने का आदेश दिया जा रहा है—

"तुम में से जो लोग एकाकि (अर्थात् बेजोड़े के अविवाहित अवस्था में) हों और तुम्हारे लौंडी और ग़ुलामों में जो नेक हों उनके निकाह कर दो, अगर वे ग़रीब हों तो अल्लाह अपने अनुग्रह से उन्हें सम्पन्न कर देगा।" (24:32)

इस विषय पर और भी बहुत-सी आयतें क़ुरआन मजीद में हैं। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने भी बहुत-सी हदीसों में निकाह करने की ताकीद की हैं। आप (सल्ल०) ने कहा—

"निकाह मेरी सुन्नत (तरीक़ा) है, जो मेरी सुन्नत से कतराता है, वह हम में से नहीं है।"

दूसरी हदीस में कहा—

"अविवाहित की नमाज़ से विवाहित की नमाज़ कई दर्जा श्रेष्ठता रखती है।"

एक और हदीस में आप (सल्ल०) ने कहा—

"इस्लाम में निकाह त्याज्य नहीं।"

एक जगह कहा—

"दुनिया एक पूंजी है जिसका सबसे अच्छा सामान नेक औरत है।"

हज़रत अनस (रज़ि०) की हदीस में कहा गया है—

"जो अल्लाह से पाक-साफ होकर मिलना चाहे उसे विवाह करना चाहिए।"

हज़रत अबूज़र (रज़ि०) अक़ाफ़ बिन तमीमी रज़ि० के विषय में कहते हैं कि

विवाह का सामर्थ्य होते हुए विवाह न करने पर आप (सल्ल०) ने उनसे कहा—

"तब तो तुम शैतान के भाइयों में से हो... तुम्हारे अविवाहित तुम्हारे बदतर लोग हैं जिनकी मौत भी बदतर है, तुम शैतान को क्यों अवसर प्रदान करते हो। उसका तो सबसे अच्छा हथियार औरतें ही हैं।"

हज़रत अनस (रज़ि०) की रवायत में कहा गया है—

"जिसने निकाह किया उसने आधा ईमान पूर्ण कर लिया। अब शेष आधे में उसे अल्लाह से डरना चाहिए।"

एक और जगह पर कहा गया—

"औरतों से निकाह करो वह तुम्हारी आमदनी में बढ़ोत्तरी का माध्यम बनेंगी।"

हज़रत जाबिर रज़ि० की रवायत में है कि प्यारे नबी सल्ल० ने फ़रमाया—

"तीन व्यक्तियों की मदद अल्लाह अपने ज़िम्मे लेता है, पहला गुलाम आज़ाद करने वाला, दूसरा बंजर ज़मीन आबाद करने वाला, तीसरा वह है जो ख़ुदा के भरोसे विवाह करता है।"

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने एक बार नौजवानों को सम्बोधित करते हुए कहा—

"ऐ जवानो के गिरोह ! तुम में से जो कोई निकाह कर सकता हो वह ज़रूर निकाह करे, क्योंकि निकाह नज़र को अधिक नीचा रखने वाला और शर्मगाह की अधिक सुरक्षा करने वाला है। और जो निकाह न कर सके तो उसे रोज़े रखने चाहिएं, क्योंकि रोज़े उसकी इच्छा को रोकने का साधन हैं।" (बुख़ारी, मुस्लिम)

एक दूसरी हदीस में आया है—

"तीन व्यक्ति नबी (सल्ल०) के घर तक आए और नबी (सल्ल०) की इबादत का हाल पूछने लगे, जब उन्हें बताया गया तो उन्होंने अपनी इबादत को कम समझा और कहा कि कहां हम और कहां रसूल (सल्ल०)। उनके तो सब अगले- पिछले गुनाह (ख़ता) माफ़ हो चुके हैं। फिर उनमें से एक ने कहा, "मैं तो सदैव पूरी रात नमाज़ पढ़ा करूंगा। दूसरे ने कहा मैं सदैव रोज़े रखूंगा और कभी नहीं छोडूंगा। तीसरे ने कहा मैं औरतों से अलग रहूंगा और कभी सहवास न करूंगा। रसूल (सल्ल०) को जब पता चला तो आपने कहा : "क्या तुम्हीं लोगों ने ऐसा-ऐसा कहा था, भलीभांति जान लो कि मैं तुम सबसे अधिक अल्लाह से डरने वाला हूं और उसकी अवज्ञा से बचने वाला हूं। इस पर भी मैं (नफ़्ल) रोज़े रखता हूं और नहीं भी रखता, (रात्रि के समय नफ़्ल) नमाज़ पढ़ता हूं और सोता हूं और औरतों के साथ

रात भी गुज़ारता हूं। तो जो मेरे तरीक़े से मुंह फेरे उसका मुझसे कोई सम्बंध नहीं।" (बुख़ारी, मुस्लिम)

क़ुरआन मजीद की इन आयतों और हदीसों और इसी विषय पर दूसरी बहुत-सी आयतों और हदीसों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस्लाम जिस समाज का निर्माण करना चाहता है, उसमें सन्यास और जिंसी अराजकता में से किसी एक की भी गुंजाइश नहीं। इसलिए इस्लाम ने ज़िना के विरुद्ध जितनी कठोर मोर्चाबंदी की है, निकाह को उतना ही आसान बना दिया है, वह समाज में किसी नौजवान को अविवाहित देखना पसंद नहीं करता। यहां तक कि वह लौंडियों और विधवाओं के विवाह के बारे में भी प्रेरित करता है, जिससे मानव-समाज पवित्रतम और सज्जनतापूर्ण समाज के सांचे में ढल जाए।

(2)

निकाह और मह्र

पिछले अध्याय के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि इस्लाम औरत और मर्द के बीच निकाह के अतिरिक्त जिंसी सम्बंधों को सहन नहीं करता। निकाह एक मर्द और औरत के बीच खुले रूप में एक ऐसा समझौता है जो इस्लाम के द्वारा निर्धारित उसूलों के मुताबिक़ अमल में आता है और जिसके अनुसार औरत एक मर्द के लिए ख़ास हो जाती है और मर्द को उस पर पति का हक़ हासिल हो जाता है।

इस्लामी समाज के नैतिक मूल्य

इस्लाम की सामाजिक व्यवस्था में मर्द को क़व्वाम (मुखिया) माना गया है। वह परिवार का मुखिया होता है, पत्नी और बच्चे उसके अधीन होते हैं। चूँकि औरत मर्द की अपेक्षा कमज़ोर भी होती है और कई पहलुओं से विवश भी, इसलिए निकाह के इस समझौते के अवसर पर भी इस्लाम अपनी नैतिक व्यवस्था को अनदेखा नहीं करता। उसकी नैतिक व्यवस्था का बुनियादी उसूल यह है कि जो जितना कमज़ोर हो उसे उतना ही ताक़तवर समझा जाए। जब तक कि उसको ताक़तवर से उसका हक़ न दिला दिया जाए। उसी प्रकार उसके निकट ताक़तवर उस समय तक कमज़ोर है, जब तक वह कमज़ोर का हक़ अदा न कर दे। इन उसूलों के अनुसार इस्लाम कमज़ोर के ज़्यादा हक़ मानता है। वह ताक़तवर की अपेक्षा कमज़ोर का, स्वस्थ की अपेक्षा अस्वस्थ का, धनवान की अपेक्षा निर्धन का और मर्द की अपेक्षा औरत का और औरत की अपेक्षा बच्चों का समर्थक और सहायक है।

निकाह में मह्र का महत्व

इस्लाम अपने इस नैतिक उसूल के अनुसार निकाह के उस समझौते में पति पर यह अनिवार्य कर देता है कि वह औरत पर दाम्पत्ति अधिकार प्राप्त करने के बदले में उसे कुछ रक़म ज़रूर दे। इस रक़म का निर्धारण निकाह के समय ही दोनों पक्षों की रज़ामंदी से किया जाता है, इस निर्धारित रक़म को मह्र कहते हैं। क़ुरआन मजीद में अनेक स्थानों पर निकाह के आदेश के साथ ही मह्र के निर्धारण और उसको अदा करने का आदेश दिया गया है। अतएव कहा गया—

> "और पाकदामन औरतें भी तुम्हारे लिए हलाल हैं चाहे वे ईमान वालों के गिरोह से हों या उन क़ौमों में से जिनको तुमसे पहले किताब दी गई थी। शर्त यह है कि तुम उनका मह्र अदा करके निकाह में उनके रक्षक बनो, न

यह कि स्वच्छन्द काम तृप्ति में लगो या चोरी छिपे दोस्तियां करो।" (5 : 5)

मह्र का अदा करना पति पर फ़र्ज़ है, कहा गया–

"इनके अतिरिक्त जितनी औरतें हैं उन्हें अपने धनों द्वारा हासिल करना तुम्हारे लिए हलाल कर दिया गया है, शर्त यह है कि निकाह के घेरे में लेकर उन्हें सुरक्षित करो। न यह कि स्वच्छन्द काम तृप्ति करने लगो। फिर जब दाम्पत्ति जीवन का आनन्द तुम उनसे लो उसके बदले में उनके मह्र फ़र्ज़ समझते हुए अदा करो।" (4 : 24)

क़ुरआन की सूरह निसा में आदेश दिया गया है कि औरतों को मह्र फ़र्ज़ जानते हुए प्रसन्नता के साथ अदा करो–

"और औरतों के मह्र को प्रसन्नता के साथ (फ़र्ज़ जानते हुए) अदा करो।" (4 : 4)

मह्र की रक़म पर औरत का अधिकार है, जिसे अदा करना पति पर फ़र्ज़ है। लेकिन मह्र को अदा करने के बाद पत्नी को अलग ही करना पड़ जाए तो आदेश है कि दिए हुए माल में से उससे कुछ भी वापिस न मांगा जाए। चाहे उसकी मात्रा कुछ भी क्यों न हो। अतएव कहा गया–

"और अगर तुम एक पत्नी के स्थान पर दूसरी ले आने का इरादा ही कर लो तो, चाहे तुमने उसे ढेर सारा माल ही क्यों न दिया हो उसमें से कुछ वापिस न लेना।" (4 : 20)

हदीसों में भी मह्र को अदा करने पर बहुत बल दिया गया है, क्योंकि मर्द को औरत पर जो दाम्पत्ति अधिकार प्राप्त होते हैं वह मह्र के बदले में हैं। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का कथन है–

"जिन समझौतों और शर्तों को पूरा करना ही चाहिए, उनमें सबसे अधिक पूरा करने के योग्य (मह्र की अदाएगी का) वह समझौता है, जिसके द्वारा औरतें तुम्हारे लिए हलाल हुईं।" (बुख़ारी)

मह्र की अदाएगी अनिवार्य है। इसका अनुमान इससे कीजिए कि अगर कोई व्यक्ति निकाह के समय यह इरादा कर ले कि वह मह्र की रक़म पत्नी को अदा नहीं करेगा तो हदीसों में ऐसे व्यक्ति को ज़िना करने वाला कहा गया है। कहा गया–

"जिसने मह्र के एक माल के बदले किसी औरत से निकाह किया और नीयत यह रखी कि वह मह्र अदा नहीं करेगा। वह वास्तव में ज़िना करने वाला है।"

मह्र में संतुलन

मह्र के इस महत्व को देखते हुए ही इस्लाम ने अधिक से अधिक मह्र निर्धारित

करने को प्रोत्साहित नहीं किया है। उसका उद्देश्य यह है कि मह्र उतना ही रखा जाए जो पति के आर्थिक सामर्थ्य के अनुसार हो। इसका कारण यह है कि मह्र पति पर पत्नी का कर्ज़ है और उसका अदा करना पति के लिए ज़रूरी है। अतएव आदेश दिया गया कि—

"औरतों को मर्दों के पल्ले बांधने की कोशिश करो और मह्र में हद से न बढ़ो।"

हज़रत उमर (रज़ि०) ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा—

"सुनो, औरतों के मह्र अधिक निर्धारित करने में एक-दूसरे से आगे न बढ़ो, क्योंकि अगर यह चीज़ दुनिया में सम्मान का कारण और अल्लाह के निकट तक़्वा (ईश-भय) की बात होती, तो इसके सबसे ज्यादा अधिकारी नबी (सल्ल०) थे, मैं नहीं जानता कि आप (सल्ल०) ने अपनी किसी पत्नी से निकाह या अपनी किसी बेटी का निकाह बारह औक़िया (480 दिरहम्) से अधिक मह्र पर किया हो।" (अबू दाऊद, तिर्मिजी, नसई, इब्न माजा, अहमद, दारमी)

आप (सल्ल०) की पत्नियों का मह्र

एक हदीस में है कि —

नबी (सल्ल०) की पत्नी हज़रत आइशा (रज़ि०) से पूछा गया कि आप (सल्ल०) की पवित्र पत्नियों का कितना मह्र था। उन्होंने कहा कि आप (सल्ल०) की पवित्र पत्नियों का मह्र बारह औक़िया और एक नश होता था। तुमको मालूम है नश कितना होता था ? मैंने कहा नहीं, उन्होंने कहा नश आधा औक़िया का होता है तो इस हिसाब से 500 दिरहम हो गए और यही आप (सल्ल०) की पवित्र पत्नियों का मह्र था। (सही मुस्लिम)

पाँच सौ दिरहम् चाँदी 1075 माशा अर्थात् 1 किलो 530 ग्राम होती है। आजकल चाँदी के भाव के हिसाब से (अगर चाँदी का भाव 30 रु० प्रति 10 ग्राम माना जाए) तो उसका मूल्य 4590.00 रु० होता है। अलबत्ता उम्मुल मोमिनीन हज़रत उम्मे हबीबा (रज़ि०) का मह्र चार हज़ार दिरहम् या चार हज़ार दीनार था। इसका अर्थ 12600 माशा यानी 12 किलो 247 ग्राम चाँदी जिसका वर्तमान मूल्य लगभग 38441.00 रु० बनता है। हज़रत फातिमा रज़ि० का मह्र चार सौ चाँदी का मिसक़ाल था, अर्थात् 1800 माशा अथवा 150 तोला चाँदी जिसका वर्तमान मूल्य लगभग 4500.00 रु० होता है।[1]

1- पुस्तक लिखे जाने के समय चाँदी का भाव 30 रु०/तोला था वर्तमान मूल्य आप स्वयं निकाल सकते हैं।

महर फ़ातिमी

भारत में ख़ुदा जाने किस प्रकार महर फ़ातिमी या शरअ मुहम्मदी की शब्दावली चल पड़ी है और लोग उसके नाम से 12.50 रु०, 25.00 रु० या 101.00 रु० महर तय करके समझते हैं कि उन्होंने बिल्कुल शरीअत के मंशा को पूरा कर दिया है, जबकि हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) का महर कितना था उसका उल्लेख ऊपर हो चुका है और अधिक तफ़्सील वर्णन के लिए देखिए हज़रत फ़ातिमा के निकाह के बारे में अल्लामा शिबली नोमानी क्या लिखते हैं–

"प्यारे नबी (सल्ल०) ने हज़रत अली से पूछा कि– तुम्हारे पास महर में देने के लिए क्या है, बोले कुछ नहीं। आप (सल्ल०) ने कहा, "और वह टूटी हुई ज़िरह (कवच) कहां है? (जो बद्र की लड़ाई में हाथ आई थी)।" कहा वह तो मौजूद है। आप (सल्ल०) ने कहा, "वह काफ़ी है।"

पाठक सोच रहे होंगे कि वह बड़ी बहुमूल्य वस्तु होगी, अगर वे इसका मूल्य जानना चाहते हैं तो उत्तर यह है कि उसका मूल्य मात्र सवा सौ (125.00) रु० है। ज़िरह के सिवा जो कुछ हज़रत अली (रज़ि०) की पूंजी थी वह एक भेड़ की खाल और एक फटी-पुरानी यमन की चादर थी। हज़रत अली (रज़ि०) ने यह सब पूंजी हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) को भेंट कर दी।" (सीरतुन्नबी, प्रथम भाग, पृष्ठ - 367)

इसी पुस्तक के दूसरे भाग में सैयद सुलैमान नदवी लिखते हैं–

"हज़रत अली (रज़ि०) ने (विवाह की) इच्छा प्रकट की तो आप (सल्ल०) ने कहा : तुम्हारे पास महर अदा करने के लिए कुछ है? बोले एक घोड़ा और एक ज़िरह के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। आप (सल्ल०) ने कहा : घोड़ा तो लड़ाई के लिए ज़रूरी है, ज़िरह को बेच डालो। हज़रत उसमान (रज़ि०) ने 48 दिरहम् में उसे ख़रीदा और हज़रत अली (रज़ि०) ने क़ीमत लाकर आप (सल्ल०) की सेवा में पेश कर दी। आप (सल्ल०) ने बिलाल (रज़ि०) को आदेश दिया कि बाज़ार से ख़ुशबूएं लाएं। निकाह हुआ .... ।"

(सीरतुन्नबी भाग- 2 पृष्ठ - 428)

मुफ़्ती अज़ीज़ुर्रहमान (रह०) देवबंदी ने महर फ़ातिमी का निर्धारण अंग्रेजी सिक्के के हिसाब से 131 रु० 3 आने[1] बताया है और मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहब ने 500 दिरहम् की चांदी का वज़न 145 तोले 10 माशे बताया है। (फ़तवा दारुल उलूम देवबंद)

1- महर फ़ातिमी का यह निर्धारण उस समय का मालूम होता है जब देश में चांदी के रुपये का प्रचलन था।

महर के निर्धारण में आपसी रज़ामंदी ज़रूरी

इस्लामी शरीअत ने महर की मात्रा का निर्धारण नहीं किया है। महर मर्द की आर्थिक स्थिति और ज़माने के हालात के अनुसार तय होना चाहिए। इस्लामी शरीअत प्रत्येक स्थिति में मध्यमार्ग अपनाती है। उसे न तो कम से कम महर प्रिय है और न लाखों करोड़ों रुपए का महर। जहां तक शरीअत के मसले का सम्बंध है महर की कम से कम मात्रा अबू हनीफ़ा (रज़ि०) के निकट 10 दिरहम् चांदी है। लेकिन यह मात्रा केवल पसन्दीदा है, अन्यथा अगर कोई मर्द ऐसा हो जिसके लिए यह रक़म भी बड़ी हो तो इससे भी कम महर निर्धारित किया जा सकता है।

महर चूँकि एक ऐसी रक़म है जिसको प्राप्त करना औरत का अधिकार है और उसका यह अधिकार अपने आप पर किसी का अधिकार स्वीकारने के बदले में होता है और चूँकि समाज में हर तबक़े के लोग रहते हैं, इसलिए इस मामले में इस्लामी शरीअत ने आज़ादी दे रखी है कि मर्द और औरत आपस में बातें करके अपनी आर्थिक स्थिति को देखते हुए इस रक़म का निर्धारण करें और निकाह करके अपने आप की सुरक्षा का सामान कर लें।

महर मिस्ल

निकाह के साथ ही औरत का जो अधिकार पति पर लागू होता है और जिसे महर कहते हैं, उसके महत्व का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि अगर किसी निकाह में संयोगवश महर का निर्धारण न हो सका हो तब भी पति पर महर का अदा करना फ़र्ज़ हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में जो महर अदा किया जाता है उसे महर मिस्ल कहते हैं। औरत के बाप के परिवार में उसी आयु, स्वास्थ्य और रंगरूप वाली दूसरी औरत का जो महर प्रचलित होगा, वही महर मिस्ल है। महर मिस्ल के बारे में कंज़ुल दक़ाइक़ में आता है—

> "जितना महर उस औरत का हो जो औरत उसके बाप की, क़ौम की उसी शहर और उसी ज़माने में, उसी की तरह आयु, रंगरूप और मालदारी में और बुद्धि और दीन (धर्म) और कुंवारेपन में होगी उतना ही महर उस औरत का ठहरेगा, उसको महर मिस्ल कहते हैं। और अगर बाप की हो क़ौम की कोई ऐसी औरत न हो तो अजनबी औरत का जो इसी तरह की महर देखा जाएगा कि वह कितना है।" (कंज़ुल दक़ाइक़ पृष्ठ 74)

महर के सम्बंध में औरत पूर्ण स्वतंत्र है

इस्लामी शरीअत ने महर के सम्बंध में औरत को पूरी स्वतंत्रता दे रखी है। इस

सम्बंध में उसको विवश नहीं किया जा सकता। इसलिए महर की कोई सीमा निर्धारित नहीं की गई है। एक बार हज़रत उमर (रज़ि०) ने महर की बढ़ती हुई प्रवृत्ति को देखते हुए सोचा की वे इसकी अधिक से अधिक सीमा निर्धारित कर दें, जिससे कि उससे अधिक रक़म की महर न बांधी जा सके। उनके अनुसार यह सीमा चालीस औक़िया (1200 ग्राम चाँदी) थी। उन्होंने एक बार ख़ुतबे में अपने इस विचार को प्रकट किया। यह सुनकर एक औरत ने उनको टोका और क़ुरआन मजीद की यह आयत याद दिलाई—

"अगर तुमने औरतों को ढ़ेर-सा माल भी दिया हो तो उसमें से तुम कुछ वापिस न लो।" (अननिसा - 20)

और कहा कि इस आयत के अनुसार आपको औरत को मिलने वाले महर पर पाबंदी लगाने का कोई अधिकार नहीं है। इस दलील को सुनकर हज़रत उमर (रज़ि०) ने कहा : "एक औरत ने सही बात कही और मर्द ग़लती कर गया।" अतः जहां तक महर की सीमा का सम्बंध है इस्लामी क़ानून में उसकी कोई गुंजाइश नहीं है। लेकिन सहीह हदीसों से साबित है कि महर को बढ़ाने में अत्युक्ति से काम लेना और मर्द की सहन शक्ति से अधिक महर तय करना एक अप्रिय काम है।

महर की रक़म पर औरत का पूर्ण अधिकार

महर की इस तफ़्सील से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यह वह हक़ है जो किसी मर्द को पति के रूप में क़बूल करने के नतीजे में किसी औरत का बनता है। और यह वह फ़र्ज़ है जो किसी औरत पर दम्पत्ति अधिकार प्राप्त होने के नतीजे में एक मर्द पर लागू होता है। महर की इस रक़म के विषय में सबसे अच्छा तो यही है कि निकाह के साथ-साथ ही इसे नक़द अदा कर दिया जाए। अगर पति पूरी रक़म अदा न कर सके तो उसका एक हिस्सा तो अदा कर ही दे। बाक़ी रक़म मर्द पर क़र्ज़ रहेगी और पति को उस समय अदा करनी पड़ेगी, जब पत्नी उसकी मांग करे। पूरी रक़म की अदाएगी न होने की सूरत में वह अपने आपको रोक भी सकती है। इस प्रकार हासिल होने वाली रक़म पर पूर्ण अधिकार औरत का होगा, उसमें किसी और की भागेदारी नहीं होगी और औरत के अलावा किसी और को इसमें से कुछ भी ख़र्च करने का अधिकार नहीं होगा। अगर वह चाहे तो पूरी रक़म या उसका कुछ हिस्सा माफ़ भी कर सकती है और अगर चाहे तो पति को ख़र्च करने की अनुमति भी दे सकती है। वह चाहे तो उसे घर में भी ख़र्च कर सकती है और अगर चाहे तो किसी को दे भी सकती है। इस मामले में उसे मजबूर नहीं किया जा सकता। अगर पति की मृत्यु महर के अदा करने से पहले हो जाए तब उसकी विरासत में से पहले पत्नी का महर अदा करना पड़ेगा, फिर उसमें से उसका हिस्सा भी दिया जाएगा। यहां तक कि

अगर एक साथ रात गुज़ारने से पहले ही तलाक़ देना पड़ जाए, तो उस स्थिति में भी पति को महर की आधी रक़म चुकानी पड़ेगी। औरत अगर इस रक़म को किसी लाभप्रद कारोबार में लगाना चाहे तो उसको इसका भी अधिकार प्राप्त है। ऐसी सूरत में वह असल रक़म और उसके लाभ की भी ख़ुद मालिक होगी और उसकी अनुमति के बिना कोई दूसरा व्यक्ति चाहे वह कोई भी हो, वह इस रक़म को ख़र्च करने के हक़ का दावेदार नहीं हो सकता।

इस्लाम में औरत के व्यक्तित्व का महत्व

महर के बारे में इन सब बातों से अनुमान लगाया जा सकता है कि इस्लाम जब एक औरत को किसी मर्द के अधीन करके मर्द को उसका क़व्वाम (मुखिया) बनाता है तो किस प्रकार उसकी आर्थिक सुदृढ़ता की फ़िक्र करता है और किस प्रकार उसे मर्द से जोड़ने के बाद भी उसके निजी व्यक्तित्व को सुरक्षित रखता है। महर की रक़म की वह पूरी हक़दार होती है। माँ-बाप और निकट सम्बंधियों की ओर से जो कुछ उसको मिलता है वह उसकी भी मालिक होती है। पति और सुसराल की ओर से जो कुछ उसे भेंट किया जाता है वह उसका अपना होता है और पति की मृत्यु के बाद उसकी विरासत में से उसे हिस्सा मिलता है। इसके बावजूद जीवन भर उसकी आवश्यकताओं को पूरा करना पति की ज़िम्मेदारी ठहराई गई है। औरत के इन अधिकारों के होते हुए भी अगर कोई व्यक्ति यह आपत्ति करता है कि इस्लाम में औरत पर ज़ुल्म होता है, तो ऐसे व्यक्ति की बुद्धि पर तरस ही खाया जा सकता है। तलाक़ की सूरत में भी यह पूरी पूँजी उसके साथ रहती है। इद्दत के दिनों में पति उसके गुज़ारे का ज़िम्मेदार होता है और इद्दत की अवधि समाप्त हो जाने के बाद उसके लिए दूसरे निकाह का द्वार खुल जाता है।

इस तफ़्सील से अनुमान लगाया जा सकता है कि इस्लाम के निकट औरत के व्यक्तित्व का कितना महत्व है।

(3)

दहेज प्रथा

शादी-विवाह में दहेज को एक महत्वपूर्ण रस्म बना दिया गया है। लड़की का बाप इस बात को अपना अपमान समझता है कि दहेज के साज़ोसामान के बिना अपनी बेटी को विदा किया जाए। लोग अपने निकट के सगे-सम्बन्धियों एवं मित्रों में अपनी बड़ाई जताने के लिए दहेज के नाम पर अधिक से अधिक सामान अपनी बेटी को देने की कोशिश करते हैं, जो साधारणतया उनकी आर्थिक सामर्थ्य से अधिक होता है।

दहेज की परिभाषा

दहेज को अरबी भाषा में जहेज़ कहते हैं। अरबी में जहेज़ का अर्थ 'सामान जुटाना' होता है। यह शब्द वर्तमान परिप्रेक्ष्य में एक विशेष अर्थ में प्रयुक्त होता है। वह यह कि: शादी विवाह में देने के लिए जुटाया हुआ साज़ व सामान दहेज कहलाता है। हिन्दी भाषा में 'दहेज' शब्द उस सामान के लिए प्रयुक्त होने लगा है जो शादी-विवाह के अवसर पर लड़की को अपने मैके वालों, विशेषकर पिता की ओर से दिया जाता है।

दहेज की क़िस्में

वर्तमान काल में मुसलमानों में दहेज की दो क़िस्में प्रचलित हैं—

(अ) पहली क़िस्म:– पहली क़िस्म दहेज की वह है जिसके अनुसार लड़की का पिता शादी के बाद बेटी को विदा करते समय उसे कुछ साज़ व सामान अपनी इच्छानुसार दे दिया करता है।

(ब) दूसरी क़िस्म:– हमारे समाज में दहेज की एक दूसरी क़िस्म भी प्रचलित है, जिसके अनुसार शादी से पहले ही कुछ लड़के वाले लड़की के बाप से एक निश्चित रक़म की मांग करते हैं और लड़की का बाप शादी की शर्त के रूप में उस रक़म को अदा करने का पाबंद होता है। इस सौदेबाज़ी में नक़द रक़म के साथ-साथ विभिन्न चीज़ें, सामान, कपड़े और बारात की आओ भगत भी शामिल होती है। इस रस्म को भी दहेज कहा जाता है। इसे "जोड़े-घोड़े" की रस्म भी कहते हैं।

(अ) दहेज की पहली क़िस्म

जहां तक दहेज की पहली क़िस्म का सम्बंध है यह एक प्राचीन रस्म है, जो

मुसलमानों में प्रचलित है। अलबत्ता इतिहास और सीरत के अध्ययन से मालूम होता है कि अरबवासियों में इस रस्म का अस्तित्व नहीं था। स्वयं अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सीरत से भी कहीं मालूम नहीं होता कि आप (सल्ल०) को शादी में कोई चीज़ दहेज के नाम पर दी गई हो। यहां तक कि हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने भी हज़रत आइशा (रज़ि०) की शादी के अवसर पर आप (सल्ल०) को कोई चीज़ दहेज में नहीं दी। स्वयं अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने अपनी चार बेटियों हज़रत ज़ैनब, हज़रत रुक़ैया, हज़रत उम्मे कुलसूम और हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) की शादियां की थीं। हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) की शादी आप (सल्ल०) के नबी होने से पहले अबुल आस बिन रबीअ लक़ीत से हुई थी। इस प्रकार हज़रत रुक़ैया और हज़रत उम्मे कुलसूम (रज़ि०) दोनों बहनों की शादियां अबू लहब के बेटे उतबा और उतैबा से हुई थीं। ये शादियां भी आप (सल्ल०) के नबी होने से पहले ही हो गई थीं। बाद में पहले हज़रत रुक़ैया (रज़ि०) और उनके इन्तिक़ाल के बाद हज़रत उम्मे कुलसूम (रज़ि०) की शादी हज़रत उसमान ग़नी से की गई थी। मगर सीरत की किताबों के अध्ययन से मालूम होता है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने इन शादियों में अपनी बेटियों को दहेज के नाम पर कोई चीज़ भी नहीं दी है।[1] और शायद यही कारण है कि दहेज का समर्थन करने वाले लोग इनमें से किसी भी शादी का उदाहरण प्रस्तुत नहीं कर सके। अलबत्ता इतिहास और सीरत की किताबों से यह अवश्य पता चलता है कि अल्लाह के रसूल ने जब हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) की शादी हज़रत अली (रज़ि०) से की तो उन्हें विदा करते समय कुछ सामान भी दिया था, जिसे दहेज कहा जाता है। यह सामान क्या था, इसकी तफ़्सील अल्लामा शिबली नोमानी ने सीरतुन्नबी नबी के प्रथम भाग में बयान है। वे लिखते हैं—

> अल्लाह के पैग़म्बर ने अपनी बेटी को जो दहेज दिया था वे बान की चारपाई, चमड़े का गद्दा जिसमें रूई के बदले खजूर के पत्ते थे, एक छागल, एक मशक, दो चक्कियाँ और दो मिट्टी के घड़े। (पृष्ठ 367)

इस सिलसिले में अल्लामा सैयद सुलैमान नदवी सीरतुन्नबी भाग दो में लिखते हैं—

> "दहेज में एक पलंग और एक बिस्तर दिया, सहाबा के वृतान्त के बारे में एक प्रसिद्ध अरबी पुस्तक 'असाबा' में लिखा है कि आप (सल्ल०) ने एक चादर दो चक्कियाँ और एक मशक भी दी थी और विचित्र संयोग है कि यही दो चीज़ें जीवनभर उनके साथ रहीं।" (पृष्ठ 428)

इन व्याख्याओं से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि दहेज की यह रस्म न तो इस्लाम से पहले अरबों में प्रचलित थी और न इस्लाम आने के बाद अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने इसे जारी किया। न ख़ुद अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को किसी शादी में

कोई चीज़ दहेज के नाम पर दी गई और न आप (सल्ल०) ने खुद अबू लहब के लड़कों की शादी में दहेज दिया। (इस्लाम से पहले) और न इस्लाम के बाद किसी शादी में अपनी किसी बेटी को दहेज दिया है। यह बात और है कि हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) इससे अलग हैं। इसका कारण यह था कि हज़रत अली (रज़ि०) का चार-पांच साल की उम्र ही से आप (सल्ल०) के घर में ही पालन-पोषण हो रहा था। इसलिए न उनके पास अपना कोई अलग घर था और न कोई आधारभूत सामग्री। उनके पास न अलग कोई पूँजी थी और न ही कोई जीविका का साधन। इस सिलसिले में इसमाईल पानीपती लिखते हैं—

"हिजरत के लगभग डेढ़ साल के बाद आप (सल्ल०) ने अपनी सबसे छोटी बेटी फ़ातिमा (रज़ि०) का निकाह हज़रत अली (रज़ि०) से कर दिया. . . . . . हज़रत अली (रज़ि०) के पास कुछ भी न था, न रहने को मकान न खाने को रोटी, ज़िरह बेचकर शादी और वलीमें (भोज) का प्रबंध किया। यह ज़िरह सवा सौ रुपये में बेची गई। एक अंसारी हारिस बिन नोमान ने अपने मकानों में से एक मकान दे दिया, उसमें आप (रज़ि०) ने दुल्हन को उतारा और इस प्रकार अपना दाम्पत्ति जीवन शुरू किया।"

मौलाना सैयद अबुल आला मौदूदी इस सिलसिले में लिखते हैं—

"इस प्रकार हज़रत अली बचपन ही में अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की परवरिश में आ गए थे और आप (सल्ल०) ने और हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) ने उनको अपनी औलाद की तरह पाला था। यक़ीनी तौर पर हज़रत अली (रज़ि०) की उम्र उस समय चार-पांच वर्ष से अधिक नहीं थी।"

(सीरते सरवरे आलम भाग-2, पृष्ठ - 120)

इस सिलसिले में अल्लामा शिबली और सैयद सुलैमान नदवी लिखते हैं—

"हज़रत अली (रज़ि०) शादी के समय तक आप (सल्ल०) ही के पास रहते थे। शादी के बाद अलग घर लेने की ज़रूरत पड़ी। हज़रत हारिस (रज़ि) बिन नोमान अंसारी के अनेक मकान थे. . . . . .उन्होंने अपना एक मकान खाली कर दिया, हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) इसमें विदा होकर आईं।"

(सीरतुन्नबी भाग-2, पृष्ठ-367)

इससे मालूम होता है कि शादी के समय तक हज़रत अली (रज़ि०) और हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) का मकान भी वही था, जो अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का था। इसलिए शादी के बाद जब ये दोनों हज़रत हारिस बिन नोमान के दिए हुए मकान में जाने लगे तो अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने अपने घर में से कुछ ज़रूरत की चीज़ें भी उन्हें दे दीं।

उन चीज़ों के देने से न तो किसी रस्म पर अमल करना अभीष्ट था और न किसी

नई रस्म को रिवाज देना था।

ऐसी सूरत और हालात में दिए गए इस सामान को आजकल के दहेज की बुनियाद बनाना बड़ी ज़्यादती की बात है। इससे केवल इतना पता चलता है कि शादी के लिए लड़के की दौलत देखने के बजाए उसकी नैतिकता, उसकी परहेज़गारी और तक़वा और ईश-भय को महत्व देना चाहिए और अगर होने वाले दामाद को अलग घर बनाना हो तो उसकी कुछ सहायता भी की जा सकती है। यह बात और है कि लड़की को विदा करते समय दिया हुआ सामान उपहार की परिभाषा में अवश्य आ जाता है और इसलिए इसे सहन किया जा सकता है। वर्तमान युग के एक बड़े आलिम मौलाना सैयद अहमद उरूज़ क़ादरी साहब लिखते हैं–

> "हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) को हुज़ूर (सल्ल०) ने जो सामान दिया था वह उनकी ज़रूरतों को देखते हुए था। मगर वह दहेज की कोई रस्म न थी। लेकिन आलिमों ने उसे दहेज ही कहा है और शादी के समय लड़की को कुछ सामान देने की दलील बनाया है।"
>
> (ज़िंदगी मासिक, मोहर्रमुल हराम 1403 हिजरी)

इसके बाद वे कहते हैं–

> "अगर ये चीज़ें शर्त और ज़बरदस्ती के तौर पर न हों और न संतुलन की सीमा से बढ़ी हुई हों तो नाजायज़ नहीं है...... मसला कोई भी हो मध्य मार्ग और संतुलन को हाथ से न जाने देना चाहिए।"
>
> (ज़िंदगी मासिक, मुहर्रमुल हराम 1403 हिजरी)

मगर मुस्लिम समुदाय की इस बदनसीबी को क्या कीजिए कि वह जीवन के दूसरे मामलों की तरह दहेज के मामले में भी संतुलन और मध्य मार्ग से हट गया है। यह रस्म भी अब शान व शौकत, बड़ाई, दौलतमंदी और दोस्तों एवं निकट सम्बंधियों में इज़्ज़त और प्रतिष्ठा के दिखावे का साधन बन गई है, जिसके कारण लोग संतुलम की सीमा से आगे बढ़ जाते हैं और क़र्ज़ के बोझ तले दब कर रह जाते हैं, और फिर वर्षों इसकी सज़ा भुगतते रहते हैं।

(ब) दहेज की दूसरी क़िस्म

जहां तक दहेज की दूसरी क़िस्म का सम्बंध है, यह एक ऐसी रस्म है जिसका इस्लाम के इतिहास में सिरे से कोई वजूद नज़र नहीं आता। इस्लामी जगत् में भी दुनिया के किसी भूभाग में ऐसी कोई रस्म मौजूद नहीं है। अलबत्ता भारत के कुछ क्षेत्रों में यह रस्म आज भी पाई जाती है। दक्षिणी भारत के अधिकतर क्षेत्रों, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, और महाराष्ट्र में यह रस्म प्रचलित है, इसी प्रकार उत्तरी भारत के कुछ राज्यों बिहार और बंगाल के मुस्लिम समाजों में भी इस रिवाज का प्रचलन है।

यह हिन्दू रस्म है

इस रस्म का न तो कोई सम्बंध इस्लाम की सामाजिक व पारिवारिक शिक्षाओं से है और न यह मुस्लिम समाज की पैदा की हुई है। दुनिया में केवल भारत ही एक ऐसा देश है जिसमें रहने वाले मुसलमानों में यह रस्म पाई जाती है और वह भी इसके कुछ विशेष क्षेत्रों में। ऐसी सूरत में आवश्यक है कि इस बात का पता लगाया जाए कि आखिर यह रस्म मुसलमानों में कहां से आई। भारतीय समाज का अध्ययन इस बात की गवाही देता है कि यह रस्म भारत में प्राचीन काल से मौजूद है। हिन्दू समाज की वैश्य जाति इस रस्म की सबसे अधिक लपेट में आई है। अब हिन्दुओं के दूसरे तबक़े भी तो इसकी लपेट में आ गए हैं। यहीं से यह रस्म देश के उन क्षेत्रों के मुसलमानों में आ गई है जहां मुसलमान शासक के बजाय केवल व्यापारी बनकर दाख़िल हुए थे और जो लोग इस्लाम कबूल करते रहे वे भी इस बुरी रस्म को अपने साथ लाते चले गए। इस तरह धीरे-धीरे इसने मुस्लिम समाज के एक भाग को अपनी लपेट में ले लिया।

दहेज का ऐतिहासिक अध्ययन

दहेज की इस दूसरी क़िस्म का सम्बंध पूर्णतः हिन्दू समाज से है। इसकी बुनियाद हिन्दू धर्म में औरत के विषय में वह धारणा है, जिसके अनुसार उसे मर्द से तुक्ष और तिरस्कृत समझा जाता है। रामचरित्र मानस में तुलसीदास कहते हैं—

> "विधाता भी औरत के मन की बात नहीं समझ सकते, यह सिर से पैर तक नीच, मूर्ख और बुराइयों की खान है।" (अयोध्या काण्ड, पृष्ठ 161)
>
> रामजी ने नारद् से कहा : "औरत बुराइयों की जड़ होती है।"
>
> (तुलसीदास की रामचरित्र मानस पृष्ठ-153)

हिन्दू धर्म के अनुसार एक लड़का पैदा क़रना औरत का कर्तव्य है। जो औरत कम से कम एक लड़का पैदा नहीं कर सकती, उसे बहुत अभागिन और तिरस्कृत समझा जाता है। वेदों के अनुसार जो व्यक्ति कम से कम एक लड़का पैदा नहीं करता वह सीधा नरक में जाता है। लड़की का जन्म माँ-बाप दोनों के साथ-साथ पूरे परिवार के लिए अपशकुन समझा जाता था। इसलिए इस अपशकुन को टालने के लिए विवाह के अटूट के बंधन में बांधकर होने वाले पति को उसे दान कर दिया जाता था। वैदिक काल भारतीय समाज में औरत की दयनीय स्थिति का जायज़ा लेते हुए कुंवर मुहम्मद अशरफ़ लिखते हैं—

> "औरतों की स्थिति और उनके कर्तव्य स्पष्ट रूप से कम और निम्न थे। उनका काम मर्दों की सेवा करना था और जीवन के कार्यक्षेत्रों में उन्हें मर्दों

पर निर्भर होना पड़ता था।.... सारांश यह कि उनकी पूरी ज़िंदगी किसी न किसी की निगरानी में गुज़रती थी और समाज के नियमों और तरीक़ों ने उन पर कम प्रतिभाशाली होने का ठप्पा लगा दिया था। जन्म के समय उसे अनचाहा मेहमान समझा जाता था। क्योंकि हिन्दुओं की धार्मिक आस्थाओं के अनुसार अभागिन बेटी बाप के गुनाहों का निवारण नहीं कर सकती। इसके कारण कुछ जातियों में उसकी बचपन में ही हत्या कर दी जाती थी। अगर वह जीवित रह गई तो उसे अटूट रिश्ते में बांधकर एक पति के हवाले कर दिया जाता था। अगर उसकी मृत्यु गर्भावस्था में हो जाती तो वह बहुत भयानक बुरी आत्मा का रूप धारण कर लेती थी, जिसे चुड़ैल के नाम से जाना जाता था और वह पड़ोस में मंडराती रहती थी। मृत्यु या सती होने से ही उसे इस रूप से छुटकारा मिल सकता था। इस प्रकार जन्म से मृत्यु तक औरत का जीवन अत्यंत कष्टपूर्ण होता था। धर्म और अन्य सुधारवादी एवं स्वच्छंदता वादी आन्दोलन उसे अपने भाग्य पर सन्तुष्ट करने के लिए तसल्ली देते रहते थे। लेकिन यहां भी उसे शक्ति और सत्ता से वंचित रखा जाता था। यहां तक कि वह धार्मिक क्षेत्र में भी किसी प्रतिष्ठापूर्ण पद से वंचित रहती थी..... हिन्दुओं की धारणाओं के अनुसार एक लड़के को जन्म देना औरत का परम कर्तव्य था।"

(हिन्दुस्तानी मुआशरह अहदे वुस्ता में पृष्ठ 226-227)

औरत के विषय में इस अपमानजनक दृष्टिकोण का ही प्रभाव था कि वैदिक काल के हिन्दू समाज ने विवाह की ऐसी क़िस्मों को स्वीकार कर लिया था, जिन्हें कोई धर्म अथवा समाज स्वीकार नहीं कर सकता था। ये क़िस्में औरत के लिए न केवल अपमान और तिरस्कार का कारण थीं, बल्कि औरत का चरित्र और पाकदामनी भी बे-हक़ीक़त होकर रह गई थी। भारत के प्रसिद्ध इतिहासकार 'वधवानी' वैदिक समाज में प्रचलित विवाह की क़िस्मों का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि वैदिक काल में आठ प्रकार के विवाहों का प्रचलन था। जिनमें से एक यह था जिसके द्वारा औरत सदा के लिए घरेलू पत्नी बनकर रह जाती थी। दूसरे प्रकार के विवाह में लड़की को आभूषणों से सजाकर के उपहार आदि देकर बाप अपनी लड़की को पति के हवाले कर देता था। तीसरे प्रकार के विवाह में पति को किसी दूसरे आश्रम में जाने पर रोक होती थी। चौथे प्रकार के विवाह में दूल्हा को एक गाय लड़की के बाप को विवाह से पहले देना पड़ती थी जिससे शादी में गाय का दूध प्रयोग हो सके। पांचवे प्रकार के विवाह में लड़का लड़की के बाप को लड़की का मूल्य देकर खरीदता था। छठे प्रकार के विवाह में लड़का पहले बलात्कार करता था फिर उसे विवाह करने पर विवश करता था। सातवें प्रकार के विवाह में लड़की को पहले लड़ाई में गिरफ़्तार

कर लिया जाता था, फिर गिरफ़्तार करने वाले के साथ उसे विवाह करना पड़ता था। वैदिक-काल में शादी का आठवां प्रकार वह था जिसमें लड़का पहले लड़की से प्रेम करता था और प्रेम भी केवल स्वभावगत नहीं, बल्कि व्यावहारिक रूप दे दिया जाता था। उसके बाद उसका विवाह उस लड़के के साथ हो जाता था।[1] वैदिक समाज की यही परिस्थितियां थीं जिनमें दूसरे प्रकार की दहेज-प्रथा शुरू की गई। अतएव इस काल में दहेज-प्रथा अपनी चरम सीमा पर पहुंची हुई थी। एम॰आर॰ वधवानी वैदिक काल पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं।

DOWRIES WERE IN VOGUE

"दहेज प्रथा काफी प्रचलित थी।" (World History P-66)

वैदिक काल में दहेज की रस्म का पाया जाना समझ में आता है। इस काल में विवाह के इन प्रकारों के अतिरिक्त समाज में इस विषय में दो विपरीत दर्शन प्रचलित थे। एक ओर वे दृष्टिकोण सक्रिय थे, जिन्होंने आगे चलकर तांत्रिक शास्त्र और कामशास्त्र का रूप धारण किया। इनके अनुसार औरत सिर्फ़ कामवासना की तृप्ति का साधन समझी जाती है और अधिक से अधिक काम- वासना से विभोर कर देना उसके जन्मजात कर्तव्यों में से था। दूसरी ओर इसी समाज में यह मान्यता भी प्रचलित थी कि प्रत्येक व्यक्ति यह इच्छा रखता था कि वह किसी ऐसी औरत का पति बने जो पाकदामन भी हो और उसके प्रति निष्ठावान भी। इन दो विपरीत मानदंडों ने इस समाज में औरत को सदैव ख़तरों में ग्रस्त कर रखा था।

ऐसी सूरत में किसी भी लड़की के बाप को लड़की के भविष्य के विषय में चिंता होनी अनिवार्य बात थी। और सम्भव है कि इस प्रकार के जिंसी ख़तरों से अपनी लड़की को सुरक्षित रखने के लिए बाल-विवाह का प्रचलन हुआ हो। इसके अतिरिक्त हिन्दू-धर्म के क़ानून के अनुसार हर ऊँची जाति का मर्द अपने से नीची जाति की औरत से विवाह कर सकता था और ऊँची जाति में ब्राह्मण धार्मिक उच्चता के आधार पर और क्षत्रिय शासक होने के कारण सुरक्षित थे। इस कारण इन दोनों ऊँची जातियों के सामने वैश्य जाति की औरतें ही रहती होंगी। शूद्र औरतों पर मलेच्छ होने के कारण यह दबाव कम ही होता होगा। शायद यही कारण है कि दहेज़ की यह रस्म हिन्दुओं में सबसे अधिक वैश्य जाति में प्रचलित है। लेकिन अब इनकी दूसरी जातियां भी इसकी लपेट में आती जा रही हैं।

ऐसी सामाजिक परिस्थितियों में प्रत्येक लड़की के बाप की पूरी कोशिश रहती होगी कि लड़की का विवाह ऐसी आयु में कर दिया जाए जब कि वह वयस्क (बालिग़) भी न हुई हो। जिससे वह जिंसी ख़तरों से सुरक्षित रह सके। वह अपनी लड़की के भविष्य के लिए किसी भी क़ीमत पर लड़का ख़रीदने के लिए तैयार हो

1- World History – R.K. WHeadhwani

जाता रहा होगा। और इसी का नाम दहेज रख दिया गया होगा। इस ख़रीद-फ़रोख़्त से जहां लड़की व्यस्क होने से पहले किसी पति के अधीन हो जाती थी, वहीं इससे सबसे बड़ा फ़ायदा यह भी रहता होगा कि वैश्य जाति की लड़की का विवाह ऊँची जाति के लड़के से हो जाता था, यह लड़की के पिता के लिए गर्व की बात थी।

उपरोक्त बातों को समझने के लिए मनुस्मृति के निम्नलिखित श्लोकों को देखना उचित होगा—

1. अगर शूद्र ऊँची जाति की औरत के साथ संभोग करे तो उसे मृत्यु दण्ड देना चाहिए।
(8–359)

2. ऊँची जाति के मर्द के साथ संभोग करने के इरादे से उसकी सेवा करने वाली शूद्र लड़की को कुछ भी दण्ड न दिया जाए, परन्तु नीची जाति के पास जाने वाली औरत के ख़िलाफ़ नियमानुसार कार्रवाई की जाए। (8–395)

3. ऊँची जाति की लड़की के साथ संभोग करने वाला नीच जाति का मर्द हत्या के योग्य है। (8–366)

4. शूद्र को अपनी ही जाति की औरत से विवाह करना चाहिए, उसे दूसरी जाति की औरत से विवाह करने का कोई अधिकार नहीं है। (9–157)

मनुस्मृति के इन धार्मिक क़ानूनों पर विचार करने ही से यह बात मालूम हो जाती है कि औरतों का बहाव निचली जाति से ऊपर की ओर ही रहता था।क्योंकि शूद्र जाति को मलेच्छ कहा जाता था, वह अपवित्र भी था और अछूत भी, इसलिए इसके बावजूद जबकि औरतों के मुंह को पवित्र ठहराया जा चुका था, शूद्र औरत के प्रति घृणित भाव का पैदा होना स्वाभाविक बात थी। ब्राह्मण जाति धार्मिक रूप से उच्च थी और क्षत्रिय जाति शासक भी थी और योद्धा भी। स्पष्ट है ऐसी सूरत में दोनों ऊँची जाति में औरतें वैश्य जाति ही की जाती होंगी। शायद यही कारण है कि दहेज की इस रस्म का रिवाज वैश्य जाति से शुरू हुआ और आज हिन्दुओं की सारी जातियों में वह फैल चुका है।

हिन्दू समाज में वैश्य ही एक ऐसी जाति थी, जिसके ज़िम्मे धन कमाना और समाज की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना था। इसलिए दौलत की देवी बनाकर लक्ष्मी के नाम से उसकी पूजा आरम्भ कर दी गई और दीपावली का त्यौहार उसके लिए विशिष्ट कर दिया गया। इसका नतीजा यह हुआ कि जो दौलत इंसान की सेवा के लिए थी, वह ईश्वर बनकर उसकी पूज्य हो गई और अधिक से अधिक धन इकट्ठा करना जीवन का उद्देश्य निश्चित किया गया। धन का यह लालच इतना बढ़ा कि लड़के वालों ने लड़कों को भी व्यापार का सामान बना दिया और मुंह मांगी

क़ीमत पर उनकी ख़रीद-फ़रोख़्त भी शुरू हो गई ।

देश की स्वतंत्रता के बाद जब शिक्षा को सार्वजनिक बनाने के लिए क़दम उठाए गए तो पाठ्यक्रम के नाम पर पश्चिमी दृष्टिकोण को ज्यों का त्यों पढ़ाना शुरू कर दिया गया । इस पश्चिमी दृष्टिकोण की बुनियाद चूँकि जीवन की भौतिकवादी धारणा थी, इसलिए नये समाज और जीवन का निर्माण भौतिकवाद के सांचे में होने लगा । और इस भौतिकता ने लक्ष्मी पूजा को एक नया दार्शनिक आधार प्रदान करके जीवन को नैतिक, मानवीय और धार्मिक मूल्यों से बिल्कुल ख़ाली करके रख दिया । इसका नतीजा यह हुआ कि जैसे-जैसे जीवन की भौतिक आवश्यकताएं बढ़ती गईं वैसे-वैसे दहेज के नाम पर लड़कों का मूल्य भी बढ़ता चला गया और अब यह मसला हिन्दू-समाज में नासूर का रूप धारण कर चुका है ।

अतएव नई दिल्ली में दहेज़ के ख़िलाफ़ आयोजित की गई एक रैली की प्रदर्शनी में विभिन्न प्रकार के दूल्हों की रेट लिस्ट भी लगाई गई थी, जिसके अनुसार—

"आई०ए०एस० — चार लाख रुपये, इंजीनियर — साढ़े तीन लाख, डाक्टर — तीन लाख, एम०ए० — एक लाख, एम०ए० फेल — पचास हज़ार, बी०ए० फेल — पच्चीस हज़ार, मैट्रिक — दस हज़ार, जूनियर सरकारी आफ़ीसर — पचपन हज़ार, प्राइवेट कम्पनी आफ़ीसर — चालीस हज़ार आदि ।"

(त्रिद्विवसीय-दावत - 7 अगस्त 1982)

इसी प्रकार जीवन के मानदण्ड के साथ-साथ समाज में दूल्हों का मूल्य भी तेज़ी से बढ़ता चला जा रहा है । इसके ख़िलाफ़ क़ानून भी बन रहे हैं । नैतिक अपीलें भी हो रही हैं । सुधार संगठन भी सक्रिय हैं और औरतों की ओर से इसके ख़िलाफ़ आवाज़ भी उठाई जा रही है । मगर दहेज की बढ़ती हुई इस प्रवृति पर इन सारी कोशिशों का कोई असर दिखाई नहीं पड़ रहा है ।

अतीत में तो शादी का मामला तैय होने के साथ-साथ दहेज का सौदा भी तैय हो जाता था और विवाह के बाद लड़की का जीवन शांति और सकून से गुज़रता था । परन्तु भौतिकता के इस पश्चिमी हमले ने धन प्रियता के प्राचीन मनोभाव को भी जगा दिया है । इसलिए अब शादी के बाद भी दुल्हनों से दहेज के लिए नित नई मांगे शुरू हो गई हैं । अब उसके सुसराल वाले उसे मजबूर करते हैं कि वह और भी दहेज की रक़म अपने बाप के पास से लेकर आए । इस मांग से घर में एक तरह का संघर्ष पैदा हो जाता है, लड़ाई-झगड़े होते हैं, मार-पीट की नौबत आती है और फिर नतीजा यह होता है कि कभी औरत स्वयं जल जाती है या फिर सुसराल वाले उसे जला कर भस्म कर देते हैं । अतएव राज्य सभा में पेश की गई एक रिपोर्ट के अनुसार—

"1977, 1978-1979 में भारत में पत्नियों को ज़िंदा जलाने की 2879 घटनाएं

घटित हुई। इनके अतिरिक्त 61 दुल्हनों ने आत्महत्या की। पहले किए गए वायदे के तहत एक बयान देते हुए बताया कि 1977 में 85 औरतों को ज़िन्दा जला दिया गया था, जबकि 1979 में 1056 औरतें ज़िंदा जला दी गईं।"

(त्रिद्विवीय दावत - 4 मार्च 1983)

इस स्पष्टीकरण से यह बात साफ हो जाती है कि दहेज की इस दूसरी क़िस्म के जन्म का कारण धन को ईश्वर समझने की धारणा, औरत को अपमानित और तिरस्कृत मानने की कल्पना और किसी की मजबूरी का शोषण है। मगर ख़ुदा जाने किस प्रकार यह बुरी रस्म मुस्लिम समाज को भी अपनी लपेट में ले रही है। उस मुस्लिम समाज को जिसकी धारणा एक ख़ुदा की ख़ुदाई है और उस धारणा के अनुसार धन मात्र एक साधन मानव और सेवक है। यह वह समाज है जो औरत को मर्द के बराबर दर्जा देकर उसे आदर और सम्मान का पात्र ठहराता है।

(4)

शरीअत में दहेज की हैसियत

इस्लामी शरीअत में दहेज की क्या हैसियत है ? इसको जानने के लिए उस के कुछ बुनियादी उसूलों पर विचार करना ज़रूरी है । सबसे पहले इस बात को मन में बैठाना होगा कि इस्लाम जो पारिवारिक व्यवस्था क़ायम करता है उसका आधार न्याय है । वह समाज में किसी व्यक्ति पर भी न तो ज़ुल्म को सहन करता है और न किसी के शोषण की अनुमति देता है ।

सामाजिक क्षेत्र में परिवार के निर्माण के समय भी इस्लाम इस उसूल को ध्यान में रखता है । विवाह के मामले में दो परिवार पक्ष होते हैं । लड़के का बाप तो ख़ुश होता रहता है कि उसके घर में एक सदस्य बढ़ रहा है और एक नौजवान लड़की उसके बेटे की पत्नी बनकर आ रही है । मगर उसी समय लड़की का बाप इस एहसास से ग्रसित रहता है कि उसके घर में एक व्यक्ति की कमी हो रही है, उसकी वर्षों की मेहनत से पाली हुई बेटी दूसरे परिवार की सदस्या बनने जा रही है और उसकी मजबूरी यह भी होती है कि वह उसे विवाह से वंचित कर घर में रख नहीं सकता ।

इस संदर्भ में मुस्लिम-समाज में जो तरीक़े प्रचलित हुए हैं, उनमें इस बात को पूरी तरह ध्यान में रखा गया है कि लड़की के माँ-बाप को उससे अलग होने का एहसास बढ़ न सके । इसलिए शादी का पैग़ाम (संदेश) लड़के की ओर से दिया जाता है । वह भी इस प्रकार नहीं कि तुम अपनी लड़की हमें दे दो । अथवा हमारे लड़के से उसका विवाह करके हमारे यहां भेज दो, जबकि वास्तव में होता यही है । मगर ऐसे अवसर पर कहा जाता है कि हमारे फ़्लाँ बेटे को अपनी सरपरस्ती में क़बूल कर लें । फिर रिश्ता क़बूल होने की सूरत में बात पूरी हो जाने पर वह लड़की के बाप पर एहसान नहीं जताता, बल्कि लड़की के बाप का वह ख़ुद एहसानमंद होता है । निकाह भी लड़की का बाप आकर नहीं करता बल्कि लड़के का बाप ख़ुद बारात लेकर लड़की के घर जाता है । इसका उद्देश्य यह है कि लड़की के बाप को कमतरी का एहसास न हो, बल्कि यह एहसास हो कि उसकी लड़की होने वाले समधी के घर की बड़ी आवश्यकता है । इस तरह विवाह के पूरे वातावरण में प्रत्येक चरण में इस बात-की पूरी कोशिश की जाती है कि लड़की के बाप और उसके परिवार के लोगों में किसी

प्रकार की कमतरी और लड़की के जुदा होने का एहसास पैदा न होने पाए।

दहेज की पहली क़िस्म

यही अवसर होता है जब वात्सल्य भाव के तहत लड़की का बाप अपनी लड़की को कुछ ऐसे साज़ व सामान देने की कोशिश करता है जो घर बसाने के लिए आवश्यक होता है। यह सामान न तो फ़रमाइशी होता है और न शादी की शर्त के तौर पर पहले से निर्धारित होता है। इसका प्रबंध लड़की का बाप अपनी इच्छा और अपनी आर्थिक स्थिति के अंतर्गत करता है। इस प्रकार के सामान देने को ही दहेज कहा जाता है और इसका औचित्य सिद्ध करने के लिए हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) को प्रदान किया गया सामान प्रमाण के रूप में पेश किया जाता है। पिछले पृष्ठों में इस मसले पर बहस में आप पढ़ चुके हैं कि यह सामान दहेज की पहली क़िस्म में आता है और अगर यह संतुलन सीमा के भीतर हो तो इसे नाजायज़ नहीं कहा जा सकता।

दहेज की दूसरी क़िस्म

असल मसला तो दहेज की दूसरी क़िस्म का है, जिस पर पिछले पृष्ठों में बहस की जा चुकी है। उस बहस में इसकी प्रकृति, कारण और परिणाम से परिचित कराया जा चुका है। दहेज की इस क़िस्म में बेशुमार ऐसी ख़ामियां हैं, जिनके कारण यह किसी भी दृष्टि से मुस्लिम समाज के अनुकूल नहीं।

इंसानियत का अपमान

दहेज की इस रस्म में सबसे बड़ा दोष इंसानियत का अपमान और तिरस्कार है। लड़की भी इंसान है और लड़के ही की तरह सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। मगर किसी लड़की को अपनाने के लिए दहेज की रक़म निश्चित करके विवाह की शर्त ठहरा देना इस बात का प्रतीक है कि लड़के और उसके घरवालों के सामने लड़की से अधिक धन का महत्व है, जिस के साथ ही उसे क़बूल किया जा सकता है। उससे इस एहसास को बल मिलता है कि लड़की कोई ऐसी बला और मुसीबत है जिसको कोई व्यक्ति उस समय तक क़बूल नहीं कर सकता जब तक कि कोई आर्थिक लालच उसे न दिया जाए।

लड़की को हीन समझना

यह रस्म जिंसी अपमान की अमानवीय नीति पर निर्भर है। जबकि अल्लाह ने क़ुरआन में कहा है, "औरत भी आदम की ही जात से है।" अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने अनेक हदीसों में इस बात की व्याख्या की है कि लड़के और लड़की में भेद करके लड़की को कमतर और उस नागवार बोझ समझना अत्यन्त बुरा और

इस्लाम की शिक्षा के विरुद्ध है। लेकिन यह रस्म लड़के और लड़की में न केवल स्पष्ट भेदभाव उत्पन्न करती है, बल्कि इससे स्वयं माँ-बाप के लिए भी लड़की का जन्म मुसीबत बन जाता है। लड़की के जन्म के साथ ही माँ-बाप उसके लिए फ़िक्रमंद हो जाते हैं। उनके सामने यह ख़तरा मंडराने लगता है कि आने वाला दामाद ख़ुदा जाने किस क़ीमत पर प्राप्त होगा। फिर स्वयं लड़की भी जैसे-जैसे वैवाहिक आयु में पहुंचती है अपने माँ-बाप को मुसीबत और चिंताग्रस्त देखकर हीन भावना में ग्रस्त हो जाती है। इसके अत्यंत बुरे प्रभाव उसके मानसिक विकास पर पड़ते हैं और उसके व्यक्तित्व का निर्माण जैसा होना चाहिए वैसा नहीं हो पाता।

अनुचित अत्याचार

यह रस्म स्पष्टतः ज़ुल्म और अत्याचार पर निर्भर है। इस ज़ुल्म और अत्याचार की इंतिहा तो यह है कि एक व्यक्ति केवल इस आधार पर अपनी हलाल कमाई किसी व्यक्ति को देने के लिए बाध्य कर दिया जाता है कि अल्लाह ने उसे लड़की का बाप बनाया है। लड़की के जन्म से जवानी की सीमा में प्रवेश करने तक उसका बाप उसे पालने-पोसने शिक्षा-दिक्षा देने में कम मेहनत नहीं करता और उस अवधि में ख़र्च भी कम नहीं होता। लेकिन इसके बावजूद जब वह अपनी लड़की का विवाह करने लगता है तो न उसकी इस मेहनत को कोई महत्व दिया जाता है और न लड़की पर हुए ख़र्च की कोई परवाह करता है। बल्कि उसकी इस मेहनत को अनदेखा करके उससे मांग की जाती है कि अगर वह इतनी रक़म नक़द देगा तभी उसकी लड़की से विवाह सम्भव है। लड़की के बाप को चूँकि लड़की का विवाह करना होता है, इसलिए वह विवश होता है कि वह लड़के वालों की मांग पूरी करे और वह कमाई जो केवल उसकी अपनी औलाद का हक़ है उसे होने वाले दामाद के हवाले कर दे जिसका उस पर कोई हक़ नहीं है। यह स्पष्टतः ज़ुल्म और अत्याचार भी है और शोषण भी। लड़की अथवा लड़के का जन्म अल्लाह की इच्छा पर निर्भर है और उसका दण्ड लड़की के बाप को सहन करना पड़ता है। इसलिए दहेज के नाम पर वसूल की जानेवाली रक़म अनुचित तरीक़े से दूसरे का माल खाने के समान है। क़ुरआन में स्पष्ट रूप से आदेश है—

> "ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, आपस में एक-दूसरे का माल ग़लत तरीक़ों से न खाओ, लेन-देन आपस की रज़ामंदी से होना चाहिए। और न आत्महत्या करो, यक़ीन जानो कि अल्लाह तुम पर मेहरबान है। जो व्यक्ति ज़ुल्म और ज़्यादती के साथ ऐसा करेगा, उसको हम ज़रूर आग में झोकेंगे। और यह अल्लाह के लिए कोई कठिन कार्य नहीं है।" (4 : 29-30)

इस आयत में अनुचित तरीक़ों से माल खाने को क़ुरआन ने ज़ुल्म और ज़्यादती

ठहराया है और इस तरह के लोगों के विषय में कहा गया है कि अल्लाह उन्हें अवश्य जहन्नम में झोंक देगा। ऐसी सूरत में जो लोग इस रस्म पर अमल कर रहे हैं उन्हें अपने बुरे अंजाम से डरना चाहिए।

कुरआन मजीद की इस आयत में जो वर्णन-शैली अपनाई गई है और जिन शब्दों में जहन्नम के दण्ड की चेतावनी दी गई है उसे देखकर हर वह व्यक्ति कांप उठेगा, जिसके दिल में तनिक भी ईमान मौजूद हो और जो इस बात पर ईमान रखता हो कि क़ियामत अवश्य आएगी और जन्नत और जहन्नम कल्पित नहीं वास्तविक हैं।

अवैध सम्बंधों का वातावरण

इस बुरी रस्म के कारण लड़कों के माँ-बाप लड़कों को जवान होने के बाद भी विवाह से रोके रखते हैं, ताकि उनकी शिक्षा पूरी हो जाए और वे रोज़गार पा जाएं, जिससे उनकी क़ीमत और भी बढ़ जाए। इधर नौजवान लड़कियाँ भी अच्छा रिश्ता न मिलने के कारण बैठी रहती हैं। ऐसी परिस्थिति में जवानी का जोश, भावनाओं का उफान, उम्र का तक़ाज़ा और जिंसी ज़रूरतें उन्हें रोके रखने में नित नई समस्याएं पैदा करती रहती हैं। फिर बिगड़ा हुआ माहौल, अश्लील पुस्तकें, फिल्में और पत्रिकाएं उनकी भावनाओं को और उभार देती हैं। इस प्रकार यह परिस्थिति नौजवान लड़कों और लड़कियों के चरित्र और उनकी पाकदामनी के लिए एक चुनौती बन जाती है। यह स्पष्टत: अत्याचार ही नहीं बल्कि मोमिन के चरित्र को दाव पर लगाने का सामान है, उन्हें ऐसे अपराध करने पर बाध्य करता है जिससे इस्लाम अपने समाज को प्रत्येक अवस्था में पवित्र रखना चाहता है और इस अपराध के करने पर खुलेआम सख़्त सजा देने का आदेश देता है। ऐसे वातावरण में अगर कोई नौजवान बाध्य होकर कोई ऐसा कुकर्म कर बैठता है, तो उसका ज़िम्मेदार वह पूरा समाज होगा जो जहेज की इस बुरी रस्म के कारण नौजवानों की पाकदामनी के लिए ख़तरा पैदा करता है।

निकाह के रास्ते में रुकावट

पिछले पृष्ठों में कुरआन मजीद की आयतों और हदीसों की रोशनी में यह बात स्पष्ट की जा चुकी है कि इस्लाम की दृष्टि में निकाह का क्या महत्व है। इस्लाम अपने समाज में मर्द और औरत के आपसी सम्बंधों की मज़बूती के लिए निकाह के अतिरिक्त किसी दूसरे तरीक़े को किसी भी स्थिति में सहन नहीं करता। स्वयं अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने नौजवानों को निकाह के लिए प्रेरित किया है और इसे निगाह तथा शर्मगाह का रक्षक ठहराया है। इसी के साथ आप (सल्ल०) ने निकाह को "मेरी सुन्नत (मेरा तरीक़ा)" बताया है। और सुन्नत के बारे में कहा है—

"तो जो मेरे बताए हुए रास्ते से मुंह फेरे उसका मुझ से कोई सम्बंध नहीं ।"

(बुख़ारी, मुस्लिम)

निकाह से मुंह फेरने और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की उस सुन्नत के रास्ते में जिसको आप (सल्ल०) ने "मेरी सुन्नत" कहा है, रुकावटें खड़ी करने और उस पर अमल के रास्ते को जटिल बनाने वालों ही के लिए अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का इर्शाद है—"उसका मुझसे कोई सम्बंध नहीं" चाहे वह कोई व्यक्ति हो या सामूहिक रूप से पूरा समाज। मुस्लिम समाज में दहेज की यह रस्म अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सुन्नत पर अमल करने में सबसे बड़ी रुकावट पैदा करती है । लड़के का बाप अधिक से अधिक दहेज वसूल करने के लालच में लड़के के विवाह में देर करता रहता है, और लड़की का बाप धन की कमी के कारण और उपयुक्त रिश्ता न मिलने की वजह से अपनी लड़की के विवाह को टालता रहता है । इस प्रकार यह रस्म नबी (सल्ल०) की सुन्नत पर अमल करने की राह में सबसे बड़ी रुकावट बन जाती है । इसलिए उसके बड़ा गुनाह होने में क्या सन्देह हो सकता है ।

स्वार्थप्रद वातावरण का जन्म

इस बुरी रस्म के नतीजे में एक प्रकार का स्वार्थप्रद समाज वजूद में आता चला जा रहा है । इसका कारण यह है कि जब लड़के का विवाह करना होता है तब बड़ी-बड़ी योजनाओं तथा साज़िशों के जाल फैलाकर अधिक से अधिक रक़म की मांग की जाती है और यह रक़म साधारणतया लड़की के बाप की आर्थिक सामर्थ्य से बहुत ज़्यादा बढ़ी चढ़ी होती है । लेकिन जब उसी व्यक्ति को अपनी लड़की का विवाह करना होता है, तो यह दानशीलता समाप्त हो जाती है और जब लड़के वाले दहेज की मांग करते हैं तो रसूल की दुहाइयां दे-देकर उन्हें ताना दिया जाता है । इसका अर्थ यह हुआ कि जब मुफ़्त में मिलने का समय होता है तो ख़ुदा और रसूल (सल्ल०) के आदेशों की परवाह नहीं की जाती लेकिन जब देने का समय आता है तो ख़ुदा और रसूल (सल्ल०) के नाम भी इस्तेमाल किए जाते हैं ।

ज़िम्मेदारी से भागना

इस्लाम अपने समाज में औरत को आर्थिक ज़िम्मेदारियों से मुक्त कर देता है और पत्नी की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति का ज़िम्मेदार पति को बनाता है । लेकिन दहेज की इस रस्म पर अमल करने वाले लोग होने वाली पत्नी तो दूर रही उसके बाप तक कि जेब पर डाक़ा डाल देते हैं, जिस पर उनका न तो कोई क़ानूनी हक़ होता है और न नैतिक अथवा धार्मिक । इतना ही नहीं किसी लड़की के पत्नी बनने से पहले की कमाई और पत्नी बनने के बाद की कमाई (अगर वह मुलाज़िम है अथवा किसी कारोबार में धन लगा चुकी है) को भी पूर्ण रूप से अपने अधिकार में कर लेते

हैं। जबकि औरत की कमाई या उसकी जमा रक़म को उसकी इच्छा के बग़ैर खर्च करने का, क़ानूनी, नैतिक अथवा धार्मिक दृष्टिकोण से पति को कोई हक़ नहीं है। जो लोग दहेज की इस बुरी रस्म में फंसे नहीं हैं इस मामले में उनका दामन भी पाक नहीं रहता। मुसलमान पतियों को पत्नी के बारे में अपने फ़र्ज़ (कर्तव्यों) को याद रखना चाहिए, क्योंकि इसके बारे में भी क़ियामत के दिन पूछगछ होगी।

अवैध कमाई का वातावरण

दहेज की इस रस्म पर अमल करने वाले लड़के के बाप तो नाजायज़ तरीक़े से फ़ायदा उठाते ही हैं स्वयं लड़की के बाप को भी उसके जन्म के साथ ही अधिक से अधिक धन जुटाने की चिंता हो जाती है। प्राय: वैध तरीक़े से तो इतनी कमाई सम्भव नहीं है, इसलिए लड़की का बाप लड़की के लिए अच्छा रिश्ता तलाश करने के लिए अधिक से अधिक पूँजी प्राप्त करने के लिए मजबूर हो जाता है। इसके लिए उसे ऐसे चोर दरवाज़े इस्तेमाल करने पड़ते हैं, जो सबके सब गुनाह के रास्ते हैं। इस प्रकार यह एक अपराध अनेक सामाजिक अपराधों के दरवाज़े खोल देता है और मोमिन के चरित्र को तबाह और विनष्ट करके रख देता है। इसका असर पूरे समाज पर पड़ता है। हरामखोरी लोगों की आदत बन जाती है। यह आदत अगर एक बार पड़ जाती है तो इससे छुटकारा प्राप्त करना सरल नहीं होता।

असंतुलित समाज का निर्माण

दहेज की इस रस्म के कारण मुस्लिम समुदाय में एक प्रकार के असंतुलित समाज का निर्माण होता जा रहा है। कम से कम दहेज देने की चिंता में लोग अपने से निम्न आर्थिक और सामाजिक दर्जे के घरानों में अपनी लड़कियों के लिए रिश्ते तलाश करते हैं। लेकिन उन्हीं घरानों को जब अपने लड़कों का विवाह करना होता है तो अपने से उत्तम आर्थिक और सामाजिक दर्जे के परिवारों की तरफ़ जाते हैं। नतीजा यह होता है कि अपने से निम्न घरों में जाने वाली लड़कियां विवाह के इस रिश्ते को क़ानूनी तौर पर स्वीकार करके उसको निभाती तो हैं, परन्तु मन और हृदय की शान्ति से जीवन भर वंचित रहती हैं और अपनी भाभियों के भाग्य पर रश्क ही नहीं, बल्कि उनसे ईर्ष्या भी करने लगती हैं। फिर निम्न दर्जे के घरानों का पति भी मानसिक, भावनात्मक और विचारात्मक एकाग्रता से वंचित रहता है और अपनी पत्नी के मुक़ाबले में निम्न भावना का शिकार हो जाता है। इस प्रकार बाहरी एकजुटता के बावजूद आन्तरिक मन-मुटाव बढ़ने का अवसर मिल जाता है और इस प्रकार समाज में बुराइयों की जड़ें मज़बूत होती चली जातीं हैं।

गुनाह का बहाना

दहेज की इस रस्म के समर्थक लोग वैचारिक रूप से भी बड़े चालाक दिखाई

पड़ते हैं। उन्होंने इस ग़ैर इस्लामी रस्म को जायज़ करने के लिए एक बहाना भी गढ़ लिया है। उनका कहना है कि इस्लामी शरीअत ने माँ-बाप की विरासत में लड़की का हिस्सा भी निर्धारित किया है। लेकिन मुस्लिम समाज में लड़की के इस हक़ को पूरी तरह अनदेखा कर दिया गया है और विरासत को लड़के ही आपस में बांट लेते हैं। इसलिए दहेज के नाम पर इस रक़म की वसूली वास्तव में बाप की जायदाद में से लड़की का हक़ वसूल करने का साधन है। ये लोग शरीअत के नाम पर ऐसा कहते समय यह भूल जाते हैं कि बाप के जीवन में विरासत के बंटवारे का प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरी बात यह है कि लड़के का बाप कब लड़की के बाप की पूरी जायदाद का अनुमान लगाता है और कब किसी क़ाज़ी या मुफ़्ती से लड़की का हिस्सा मालूम करता है। और कब ऐसा होता है कि लड़के वाले दहेज की उतनी ही रक़म की मांग करते हैं जितनी बाप की जायदाद में लड़की का हिस्सा होता है। यह सरासर एक प्रकार की ढिठाई और इस्लामी शरीअत के साथ मज़ाक़ है। ख़ुदा इससे हम सबको बचने की तौफ़ीक़ दे।

इस्लामी शरीअत से बग़ावत

पिछले पृष्ठों में इस बात पर रोशनी डाली जा चुकी है कि निकाह के लिए मह्र का कितना महत्व है। इस विषय पर भी विचार किया जा चुका है कि अगर मह्र अदा करने से पहले ही पति की मृत्यु हो जाए तो पत्नी का हक़ होगा कि उसकी छोड़ी हुई जायदाद में से पहले उसका मह्र अदा किया जाए। . . . . . इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस्लाम किसी दशा में भी औरत के शोषण को सहन नहीं कर सकता। इस्लामी शरीअत के इस बुनियादी उसूल की मौजूदगी में इस बात की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती कि हम औरत के हक़ों को अनदेखा करके केवल मर्द के फ़ायदे की बातें सोचें। इस प्रकार का दुस्साहस वस्तुतः इस्लामी शरीअत से बग़ावत के समान है। हम देखते हैं कि औरत का मह्र अगर कुछ सौ होगा तब लड़के की क़ीमत कम से कम 10 हज़ार से लेकर लाखों तक पहुंच जाती है। लड़की का मह्र तत्काल देययोग्य होता है, या लड़की की मांग पर अदा करना होता है लेकिन वह प्रायः अदा नहीं किया जाता लेकिन लड़के की क़ीमत को नकद वसूल किया जाता है। बल्कि बारात के जाने से पहले ही वसूल कर लिया जाता है। यह इस बात का प्रतीक है कि ऐसे लोग निकाह जैसे नाज़ुक मामले में भी अल्लाह की शरीअत से बग़ावत करने का दुस्साहस इस प्रकार कर रहे हैं, मानो अल्लाह ने इस मामले में उन्हें कोई हुक्म ही नहीं दिया है।

विचार कीजिए कि निकाह की शर्त शरई मह्र के बजाए दहेज की रक़म को ठहराया जाए तो क्या यह धर्म के साथ मज़ाक़ नहीं है? क्या यही वह निकाह है जिसे हुज़ूर (सल्ल०) ने अपनी सुन्नत ठहराया है

(5)

सुधार और अमली उपाय

भारत के मुस्लिम समाज में प्रचलित दहेज की दूसरी क़िस्म के दोषों के सामने आ जाने के बाद ज़रूरी हो जाता है कि हम सोच-विचार करके ऐसे उपाय इख़्तियार करें जिनके द्वारा मुस्लिम समाज से इस बुरी रस्म को जड़ से उखाड़ फेंका जा सके।

ऐसी सूरत में आदरणीय आलिमों और मुफ़्तियों को चाहिए कि लोगों को इस तरह के निकाह के शरई दोषों से परिचित कराएं और अपने प्रभाव क्षेत्र में इस बुरी रस्म को मिटाने का प्रयास भी करें।

औरतों में जागरुकता की आवश्यकता

इसके अतिरिक्त औरतों के समाचार पत्रों और पत्रिकाओं को भी इस विषय पर विशेष ध्यान देना चाहिए और मुसलमान लड़कियों में मान-सम्मान के भावों को इस प्रकार जाग्रत कर दिया जाए कि वे ऐसे हरामख़ोर नौजवानों से विवाह करने के मुक़ाबले में उस नेक नौजवान से विवाह करने को प्राथमिकता देने लगें, जो दहेज की शर्त के बिना विवाह करने को तैयार हो जाए।

नौजवानों में स्वाभिमान पैदा करना

इसके साथ-साथ यह बात भी ज़रूरी है कि मुस्लिम नौजवानों में ज़िम्मेदारी का एहसास और स्वाभिमान का भाव इस तरह पैदा करने का प्रयत्न किया जाए कि वे उस व्यक्ति को अपना उपकारक मानें, जो अपनी नौजवान लड़की को उनका जीवन-साथी बनाने के लिए तैयार होता हो। और इस एहसान भाव के कारण वे इस बात को अख़्लाक़ की पस्ती और चरित्रहीनता समझने लगें कि ऐसे उपकारक की जेब पर डाका डाला जाए। उन्हें इस बात का एहसास दिलाया जाए कि अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) से बग़ावत न करें।

मुस्लिम संगठनों का कर्तव्य

मुसलमानों के अपने धार्मिक और समाज सुधारक संगठनों और आन्दोलनों को भी इस महत्वपूर्ण समस्या को बुनियादी महत्व देना चाहिए और इस बात की कोशिश में पूरा ज़ोर लगा देना चाहिए कि जितनी जल्दी सम्भव हो इससे मुस्लिम समुदाय को छुटकारा मिले।

देश के धार्मिक मदरसों और विद्यालयों को भी पाठ्यक्रम में ऐसी चीज़ें रखनी

चाहिएं जिनसे विद्यार्थियों में इस रस्म के ख़िलाफ़ नफ़रत पैदा हो ।

आपात सुधार योजना की ज़रूरत

इस बात की भी आवश्यकता है कि इस बुरी रस्म को मिटाने के लिए आपात योजनाएं बनाई जाएं । इस बीमारी का इलाज न केवल नैतिक उपदेशों से किया जा सकता है और न हुकूमत के क़ानून इस दिशा में कोई सहायक हो सकते हैं । सरकार के क़ानून तो उस समय काम आ सकते हैं जब समाज में नैतिक संवेदना इतनी जाग्रत हो कि जो विवाह इस प्रकार के दहेज पर हो रहा हो तो लोग उसमें सम्मिलित न हों, और अपराधियों को उपयुक्त सज़ा दिलाने के लिए सरकारी मिशनरी का भरपूर सहयोग करे ।

उदासीनता विनाशकारी होगी

अगर मुस्लिम समुदाय और उसके रहनुमाओं ने इस ओर ध्यान नहीं दिया और वे केवल मूक दर्शक बने रहे तो इसका नतीजा यह होगा कि मुसलमानों के जो इलाक़े इस लानत से अभी तक सुरक्षित हैं, कुछ समय बाद वे भी इसकी लपेट में आ जाएंगे और फिर इसका इलाज और भी अधिक कठिन हो जाएगा । जिन इलाक़ों में अभी यह रस्म मौजूद नहीं है, वहां भी इसके मौन प्रभाव पड़ते जा रहे हैं । स्थिति यहां तक तो आ चुकी है कि लोग लड़कों के विवाह का पैग़ाम देते समय इस बात को ध्यान में रखते हैं कि लड़की के बाप की आर्थिक स्थिति अच्छी हो, जिससे कम से कम पहले क़िस्म के दहेज ही में अच्छा ख़ासा साज़ो सामान हासिल हो जाए । यह चीज़ आगे बढ़कर दहेज की दूसरी क़िस्म को जन्म दे सकती है । इसके प्रति अगर उदासीनता दिखाई गई तो यह लानत पूरे समाज को अपनी लपेट में ले सकती है और देश में तेज़ी से फैलती हुई जिंसी अराजकता (Sexual Anarchy) के रुजहान से इस समुदाय को सुरक्षित रखना कठिन कार्य हो जाएगा ।

अल्लाह इस बुरे दिन से सुरक्षित रखे ।